श्री उत्तराध्ययन सूत्र

[पद्यानुवाद]

अनुवादक .

आचार्य श्री हस्ती लजी हाराज

सम्पादक .

श्री शशिकान्त झा शास्त्री

क

सम्यग् ज्ञान प्रचारक ण्डल

ज य पु र

☐ प्रकाशक
सम्यग् ज्ञान प्रचारक मण्डल,
बापूनगर, जयपुर (राजस्थान)

☐ मुद्रक
श्रीचन्द सुराना 'सरस' के लिए
शैल प्रिन्टर्स, आगरा-३

☐ प्र ृत्ति
वि० स० २०३४ आषाढ पूर्णिमा
वी० नि० स० २५०३
ई० सन् १९७७, जुलाई

☐ मूल्य
पाँच रुपया मात्र

प्रकाशकीय

महान् ज्योतिर्धर आचार्य पूज्य श्री रत्नचन्द्र जी म० सा० के द्विजन्म शताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य मे उत्तराध्ययन सूत्र का हिन्दी पद्यानुवाद पाठको की सेवा मे प्रस्तुत करते हुए हमे अत्यन्त प्रसन्नता है।

आज से दो सौ वर्ष पूर्व सवत १८३४ मे वैशाख शुक्ला पचमी को इस ज्योति का आविर्भाव हुआ जिसने अपने ज्ञान-क्रिया सम्पन्न, तेजस्वी व्यक्तित्व और तप-त्याग मूलक धर्मदेशना से जन-जन मे आत्म-चेतना की लहर पैदा कर दी। श्रीरत्नचन्द्र जी म० सा० आचार्य श्रीधर्मदासजी म० सा० की परम्परा के उज्ज्वल नक्षत्र थे। अठारहवी शती के आरम्भ मे आचार्य श्री धर्मदासजी म० सा० ने जो क्रियोद्धार किया, उसे उन्नीसवी शती मे आपने फिर से पुनर्जीवन प्रदान किया।

आपके बाद जो आचार्य परम्परा चली, वह इस प्रकार है--पूज्य श्री हमीरमल जी महाराज, पूज्य श्री कजोडमल जी महाराज, पूज्य श्री विनयचन्द्र जी महाराज, पूज्य श्री शोभाचन्द्र जी महाराज और वर्तमान आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज। आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज साहब उत्कृष्ट सयम साधना के साथ-साथ जीवन निर्माणकारी शास्त्रीय और ऐतिहासिक साहित्य-सर्जना मे महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं। आत्मोत्थान और सामाजिक-धार्मिक जागृति के लिए आप ही की प्रेरणा से सवत २००२ मे स्व० आचार्य श्री रत्नचन्द्र जी म० सा० की स्वर्गारोहण शताब्दी के पुनीत अवसर पर सम्यक् ज्ञान प्रचारक मण्डल की स्थापना की गयी। मण्डल तभी से स्वाध्यायी सघ, साधक सघ, जैन सिद्धान्त शिक्षण सस्थान आदि प्रवृत्तियो के माध्यम से चरित्र निर्माणकारी कार्यों मे सक्रिय रूप से जुडा हुआ है। विचार प्रेरक, सस्कार वर्धक सत्साहित्य के प्रकाशन की दृष्टि से मण्डल ने अब तक ५० पुस्तके प्रकाशित की है और 'जिनवाणी' मासिक पत्रिका का गत ३४ वर्षों से नियमित प्रकाशन हो रहा है।

भगवान महावीर का अन्तिम उपदेश 'उत्तराध्ययन' सूत्र के रूप में आज हमारे समक्ष सुरक्षित है। उत्तर का अर्थ प्रधान और पीछे का अर्थात पश्चाद्-वर्ती भी होता है। इसमे ३६ अध्ययन प्रधान एवं जीवन के अन्तिम भाग में कहे जाने से ये 'उत्तराध्ययन' के नाम से विख्यात है। इसमे साधक की साधना के प्रथम सोपान विनय से लेकर अन्तिम चरण संलेखना द्वारा मरण सुधारने तक की शिक्षा दी गयी है।

आचार्य श्री हस्तीमल जी म० सा० ने परम कृपा करके सामान्य पाठको, जिज्ञासु साधको और स्वाध्यायियो के लिये 'उत्तराध्ययन' सूत्र का सरल हिन्दी मे यह पद्यानुवाद प्रस्तुत कर भगवान् महावीर की अन्तिम वाणी को लोक भोग्य बनाने का महान् उपकार किया है। इसके सम्पादन मे प० शशि कान्त जी झा का हमे विशेष सहयोग मिला है। ग्रन्थ के प्रकाशन मे भोपाल गढ निवासी धर्मनिष्ठ श्रावक श्री जालमचन्दजी बाफना से हमे आर्थिक सहयोग मिला है। इन सबके प्रति हम सम्यक् ज्ञान प्रचारक मण्डल की ओर से हार्दिक आभार प्रकट करते है।

आशा है, यह ग्रन्थ साधना पथ पर बढने वाले पथिको—साधको के लिए पाथेय और प्रकाश स्तम्भ का कार्य करेगा।

सोहननाथ मोदी
अध्यक्ष

चन्द्रराज सिंघवी
मन्त्री

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर

प्राक्कथन

□ आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज साहब

जैन आगमो मे 'उत्तराध्ययन' सूत्र का बडा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसकी सबसे बडी विशेषता यह है कि इसमे साधना पथ पर सद्य अग्रसर हुए साधक से लेकर उच्चतम श्रेणी पर आरोहणरत साधक के लिए भी साधना की सभी आवश्यक सामग्री उत्तरोत्तर आवश्यक मार्ग दर्शन के लिए सन्निहित है। इसे, यदि केवल स्वर्ग अपितु, अपवर्ग अर्थात् शास्वत सिद्धपद पर पहुँचाने वाली निसैनी (सीढी) भी कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी।

इसमे भगवान महावीर के विश्व कल्याणकारी अन्तिम उपदेश है, जो उन्होने निर्वाणारोहण की रात्रि मे कृपापूर्वक प्रदान किये। निर्वाण की ओर प्रयाण करते समय दिये गये उपदेशो से गुम्फित होने के कारण भी उत्तराध्ययन सूत्र को निर्वाण के सोपान की सज्ञा दी जा सकती है।

उत्तराध्ययन सूत्र पर सस्कृत, प्राकृत भाषाबद्ध विविध रचनाएं प्रकट हो चुकी हैं। गुजराती और राजस्थानी के पद्यानुवाद भी मिल सकते है, पर हिन्दी भाषा मे पद्यानुवाद का यह पहला ही सस्करण होगा। पूर्वाचार्यो की भी सर्वसाधारण पाठको के सुबोधार्थ सूत्र पाठो की विशेषत दशवैकालिक और उत्तराध्ययन सूत्र की गीतिका देशी भाषा मे उपलब्ध है। किन्तु आज राष्ट्र भाषा हिन्दी का देशव्यापी प्रचार होने से शुद्ध हिन्दी मे "स्वान्त सुखाय" किया गया यह पद्यानुवाद "लोकहिताय" अधिक उपयोगी होगा, इस विचार से लोकप्रिय राधेश्याम तर्ज पर पद्य प्रस्तुत किये गए हैं। यो ब्रह्मऋषि की "उत्तराध्ययन गीतिका" उपलब्ध है, पर उसमे अविकल अनुवाद नहीं है।

प्रस्तुत रचना मे सूत्र की मूल गाथाओ का अविकलभाव लेने का ध्यान रखा गया है। मूल गाथा का कोई शब्द तथा उसका भाव न छूटे उसके लिए शक्य सतर्कता रखने पर भी प्रमादवश सम्भवत कही कोई शब्द छूटा हो तो "समादधतु सज्जना" इस वचनानुसार विद्वद्जन उसका समाधान करेंगे।

ब्रह्मचर्य अध्ययन मे गद्य का पद्यानुवाद करने मे छन्द बदला गया है। अन्य अध्ययनो मे प्राय एक ही प्रकार के उपरोक्त तर्ज है।

सम्पादन कार्य मे प० शशिकान्त जी ने अनुवाद मे लालित्य और रोचकता लाने का जो निष्ठापूर्वक श्रम किया है, उसे भुलाया नही जा सकता। जैन समाज के हर घर मे हर स्वर मे भ० महावीर का यह प्रस्तुत उपदेश "रामायण" की तरह प्रतिदिन पठन-पाठन मे स्थान प्राप्त करे और प्रत्येक भारतवासी महावीर के उपदेशो का सरलता से ज्ञान प्राप्त कर सके, यही भावना इस पद्यानुवाद के मूल मे सन्निहित है।

□

श्रीमती मानीबाई अपने माता-पिता तथा परिवार के उच्च संस्कारो के अनुरूप ही बडी सरलमना, सात्विक विचारो वाली धर्मपरायण महिला है। आपके पुत्र श्रीसज्जनराजजी जब तीन वर्ष के थे, तभी आपका पति-वियोग सहना पडा। किन्तु हिम्मत और सूझबूझ के साथ आपने अपनी सन्तान को धार्मिक संस्कारो से सम्पन्न बनाया और व्यवसाय के क्षेत्र में लगाया।

श्रीसज्जनराजजी काकरिया अपने पूज्य नानाजी एव मामाजी के निर्देशन मे व्यापार कुशल बने और आज आगरा मे कुशलतापूर्वक अपना व्यवसाय चला रहे है।

श्रीमती मानीबाई तीन वर्षीतप कर चुकी है और सतत व्रत-उपवास आदि धार्मिक क्रियाओ मे जीवन को सार्थक बना रही है।

अपने पूज्य पिता श्री की स्मृति मे तथा माता श्री की भावना के अनुरूप इस पुस्तक प्रकाशन में सहयोग देकर श्री सज्जनराजजी ने भगवद्वाणी के प्रचार में अनुकरणीय कार्य किया है।

सम्यग् ज्ञान प्रचारक मण्डल की ओर से हम उक्त महानुभावो का हार्दिक अभिवादन करते है।

मन्त्री
सम्यग् ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर

उत्तराध्ययन सूत्र करुणासिन्धु, विश्ववन्धु भगवान् महावीर के अन्तिम उपदेशों का अनमोल संग्रह है। इसका प्रत्येक अध्ययन जीवन को जागृत और सार्थक बनाने की क्षमता वाला है। इन उपदेशात्मक अध्ययनों के अनुकूल चलने पर प्रत्येक व्यक्ति का जीवन अग्नि में तपे स्वर्ण की तरह अपूर्व तेज और आभा मण्डित बन कर स्व-पर का कल्याण कारक बन सकता है। इसके कतिपय अध्ययन तो ऐसे मर्मस्पर्शी भाव वाले हैं कि जिनके पठन-मनन और आचरण से निश्चय ही अलौकिक आनन्द की प्राप्ति सम्भव है।

आरम्भ के विनयश्रुत अध्ययन में विनीत एवं अविनीत शिष्य का जो चरित्र-चित्रण किया गया है, दूसरे परीषह अध्ययन में जीवन को दृढ़ और सचेत बनाने वाले जिन परीषहों को दिखाया गया है, वे निश्चय आंख खोलने वाले हैं। नमि प्रव्रज्या अध्ययन तो मोह तोड़ने में बेजोड़ माना जायेगा। ऐसे ही द्रुमपत्रक अध्ययन तो निश्चय अनुपम है। इसमें अपने परम प्रिय शिष्य गौतम गणधर को काल के सूक्ष्म भाग "समय" तक को भी व्यर्थ नहीं गंवाने के लिए प्रभु महावीर ने देवोपम दिव्य देह का जराग्रस्त होने पर कर्ण, चक्षु, दंत तथा केश और त्वचा आदि के विकृतियों का जो चित्रण एवं तरु के गिरते पाण्डुपत्रों का उद्धरण देकर जीवन और यौवन की क्षणभंगुरता का जो रूप दिखाया है, निश्चय ही दार्शनिक दृष्टि से यह अध्ययन अपनी गरिमा और मार्मिकता में बेजोड़ है।

रूपान्तर माना जाता। इस कमी को ध्यान मे रखकर जैन जगत एव श्रमण परम्परा के प्रख्यात सन्त और विद्वन्मूर्धन्य आचार्य श्री हस्तीमल जी म० ने सवाई माधोपुर चातुर्मास म धर्मप्रेमी जन विशेषकर स्वाध्यायी बन्धुओ के लिए हिन्दी मे पद्यानुवाद कर सम्पादन का दायित्व मुझ पर दिया।

आचार्य श्री के इस अभिनव कृतित्व का सम्पादन-दायित्व मैने स्वीकार तो कर लिया पर कह नही सकता कि उसका सम्यक् निर्वाह मुझ से कहाँ तक हो सका है? इस जीवन प्रेरक कृति के आन्तरिक मर्म को सम्यक् सम्पादन कर पाठको के समक्ष रखने का भार सम्पादक का है, मगर अपनी सीमित क्षमता के कारण मुझमे वैसा नही हुआ होगा, अत अपनी ओर से हुई त्रुटि के लिए पाठको से क्षमा माँगने के सिवा मेरे पास दूसरा कोई मार्ग नही है, और मुझे विश्वास भी है कि पाठक क्षमादान के द्वारा मुझ पर अनुग्रह करने मे कभी पीछे नही रहेगे।

इसी आशा और विश्वास के सग!

विनयावनत

शशिकान्त झा 'शास्त्री'

श्री उत्तराध्ययन सूत्र

[पद्यानुवाद]

पाकर गुरुजन का अनुशासन, ना विज्ञ शिष्य मन क्रोध करे।
तज क्षुद्र सग और हास्य खेल, धारण कर शान्ति सदा विचरे ॥६॥

व्यवहार दुष्ट ना करे कभी, न व्यर्थ किसी मे बात करे।
नियत समय पर पाठ ग्रहण कर, बैठ अकेला ध्यान धरे ॥१०॥

कर चाण्डालोचित कर्म भिक्षु, सहसा न छिपाये उसे कही।
यदि बुरा किया तो कहे बुरा, और नही किया तो कहे नही ॥११॥

गलित अश्व सम गुरु वचनो के, चाबुक की ना चाह करे।
आकीर्ण अश्ववत् वचन-कशा को, देख पाप का त्याग करे ॥१२॥

इच्छानुकूल व्यवहारी हो, और कार्यकुशलता से करते।
रोष-भाव वाले गुरु को भी, मुनि विनयशील प्रमुदित करते ॥१३॥

बोले न विना पूछे कुछ भी, पूछे भी झूठ नही बोले।
आने पर क्रोध विफल कर दे, प्रिय अप्रिय सब धारण कर ले ॥१४॥

आत्मा को वश मे है करना, कारण आत्मा ही दुर्दम है।
इस भव परभव मे सुख पाता, जो दान्त आत्मा सक्षम है ॥१५॥

अपने द्वारा तप सयम से, दमन स्वय का है अच्छा।
वध-बन्धन द्वारा पर-जन से, है दमन नही लगता अच्छा ॥१६॥

गुरुजन के प्रतिकूल आचरण, तन वाणी से करे नही।
जन समक्ष या रहोभूमि मे, ऐसा मन मे धरे नही ॥१७॥

गुरुजन के आगे या पीछे, या समस्थान नही बैठे।
शय्या से उत्तर दे न कभी, और जाघ सटाकर ना बैठे ॥१८॥

बैठे नही बाँध कर पलथी, पक्ष पिण्ड से भी ना कही।
गुरुजन के सम्मुख अविनय से, जो पैर प्रसारण करे नही ॥१६॥

आचार्य बुलावे को सुनकर, हो मौन कभी ना शिष्य रहे।
गुरु - प्रसाद इच्छुक मोक्षार्थी, सदा गुरू के पास रहे ॥२०॥

जो एक बार या पुन पुन, बैठा न रहे गुरु-आज्ञा सुन।
गुरु वचन विनय से ग्रहण करे, तज धीर शीघ्र अपना आसन ॥२१॥

आसन या शय्या पर बैठा, गुरुजन से कुछ पूछे न कभी।
उकडू आसन से आ समीप, पूछे प्राजलियुत प्रश्न सभी ॥२२॥

सुविनीति शिष्य को गुरु जन भी, प्रश्नो के उत्तर खोल कहे।
सूत्र अर्थ जैसा जाना है, वैसा ही सद्ज्ञान कहे ॥२३॥

भिक्षु असत्य नही बोले, और निश्चय भापा कहे नही।
भाषा के दोपो को छोडे, माया को मन मे धरे नही ॥२४॥

सावद्य व्यर्थ और मर्मन्तुद, पूछे जाने पर भी मुनि जन।
अपने या पर दोनो के हित, बोले न भूल कर कभी वचन ।२५॥

शालागृह या सन्धि - स्थान, या राजमार्ग एकान्त परे।
भिक्षु अकेली रमणी के सग, खडा रहे ना बात करे ॥२६॥

शीतल या कुछ रूक्ष वचन से, गुरुवर जो शिक्षा देते।
वह मेरे ही लाभ हेतु, यो देख उसे धारण करते ॥२७॥

यह उपालम्भयुत अनुशासन, दुष्कृत्य निवारक होता है।
प्राज्ञ उसे हितकर माने, अप्राज्ञ द्वेष मन लाता है ॥२८॥

भय - रहित विज्ञ रूखी शिक्षा, भी हितकारी मन लाता हे।
होता वही क्षान्ति मन शोधक, मूर्ख द्वेप सधाता हे ॥२९॥

गुरु आसन से निम्न और, निप्कप स्थिरासन पर वैठे।
ना करे चपलता कर पद से, ना वहुत उठे स्थिर हो वैठे ॥३०॥

नियत समय भिक्षा को निकले, तथा समय पर आ जाए।
वर्जन कर विपरीत काल, सब कार्य समय पर कर पाए ॥३१॥

गृहिदत्त आहार - गवेषी हो, ना भिक्षु पंक्ति मे खडा रहे।
साधुवेष से भिक्षा पाकर, यथा समय नित भोग लहे ॥३२॥

भिक्षाचर हो तव एकाकी, खडा दृष्टि मे रहे नही।
दूर और अति निकट न ठहरे, गमन लांघ मुनि करे नहीं ॥३३॥

ऊँचे नीचे अति दूर निकट, स्थित दाता से ना ग्रहण करे।
पर - हित निर्मित प्रासुक-भोजन, संयत मुनि विधि से ग्रहण करे ॥३४॥

प्राण और बीजादि रहित, सच्छन्न स्थान जो संवृत हो।
समभाव सहित ना छिटकाते, आहार करे मुनि संयत हो ॥३५॥

अच्छा किया पकाया वा, छेदन या हरण किया अच्छा।
है इष्ट सुघड सुन्दर ऐसा, ना वचन सदोष कहे अच्छा ॥३६॥

बुद्धिमान, शिष्यो को गुरुजन, शिक्षण देकर हर्षाते।
भद्र अश्व के चालक सम वे, मोद बहुत मन मे पाते ॥
विनय - रहित का शासन करके, गुरुजन क्लेश उठाते है।
गलितअश्व के चालक जैसे, मार मार थक जाते हैं ॥३७॥

पापदृष्टि गुरु शुभ अनुशासन, को ठोकर चाँटा जाने।
हितकारी उनकी शिक्षा को, गाली तथा मार माने ॥३८॥

नम्र शिष्य सुत भ्रातृ स्वजनवत्, गुरु अनुशासन शुभ माने।
किन्तु कुशिष्य सुशासित हो, भी निज को दास तुल्य जाने ॥३९॥

शिष्य न कुपित करे गुरुजन, को और न स्वयं कुपित होवे।
बने न उपघाती गुरुजन का, छिद्रान्वेषी ना हो जावे ॥४

आचार्यदेव को रुष्ट जान, मृदु प्रिय वचनो से तुष्ट करे।
ऐसी होगी फिर भूल नही, अजलि जोडे उपशान्त करे ॥४१॥

धर्माजित व्यवहार सदा, आचार्यो ने आचरण किया।
गर्हा को प्राप्त नही होता, जिसने वैसा आचार किया ॥४२॥

भाव मनोगत और वाक्यगत, गुरुवाणी का ग्रहण करे।
भाव समझ कर कार्यरूप दे, आज्ञा को स्वीकार करे ॥४३॥

विनय - भाव से ख्यात शिष्य, जो विना प्रेरणा कार्य करे।
यथादेश सत्कार्य करे, निज कृत्यो मे ना ढील धरे ॥४४॥

प्राज्ञ जानकर विनय करे, उसकी जग महिमा होती है।
विनयी भी धर्माश्रय वैसे, ज्यो शरण जीव भू होती है ॥४५॥

पूज्य प्रसन्न होते उस पर, वे पूर्व विनय परिचित होते।
और विपुल मोक्ष मूलक उसको, श्रुत ज्ञान लाभ हो खुश देते ॥४६॥

शास्त्र - पूज्य सशय - विहीन, गुरु भक्त कर्म सम्पदयुत् हो।
व्रत पाल दिव्य पद है पाता, तप और समाधि - सयुत हो ॥४७॥

सुर नर गन्धर्वो से पूजित, मल पक रचित यह तन तज कर।
शाश्वत सिद्धत्व मिलाता या, लघु कर्म महर्द्धिक देव प्रवर ॥४८॥

२. परीषह

आयुष्मन् ! उन वीर प्रभु ने, बाईस परीषह बतलाये।
सुन जान जिन्हे भिक्षुक भिक्षा मे, पाकर कभी न घबराये ॥१॥

कहो कौन बाईस परीषह, वीर प्रभु ने बतलाये।
जो सुन जान विजित परिचित, कर भिक्षु कभी न घबराये ॥२॥

ये हैं वे बाईस परीषह, प्रभु ने जो बतलाये है।
जो सुन जान विजित परिचित, कर भिक्षु नही घबराये है ॥३॥

प्रथम क्षुधा और तृष्णा दूसरा, जो कि कण्ठ-शोषण करता।
शीत उष्ण और दश-मशक का, पीडन मन विचलित करता ॥
अचेल अरति स्त्रीचर्या, शय्या निषीधिका का परिषह।
आक्रोश याचना वध अलाभ, और स्पर्श तृणो का है दुस्सह ॥
है जल्ल परीषह अष्टादश, सत्कार पुरस्कृति सुखकर है।
प्रज्ञा प्रखर अह लाती, दर्शन अज्ञान भी दुखकर है ॥४॥

परीषहो के इस विभाग को, काश्यप ने है बतलाया।
क्रमवार उसे मैं कहता हूँ, सुन प्रभु ने जैसा फरमाया ॥५॥

क्षुधा व्याप्त होने पर तन मे, तपसी मुनि साहस दिखलावे।
फल फूलादिक छेदन पाचन, स्वय करे ना करवावे ॥६॥

काक जघ - सम क्षुधा-क्षीण-तन, नस-ढाचा भर रह जाए।
अशन-पान मात्रज्ञ साधु, भिक्षा अदीन मन से लाए ॥७॥

पापभीरु सयम तत्पर, अत्यन्त प्यास-पीडित होकर।
शीतोदक सेवन करे नही, लाए प्रासुक जल शोधन कर ॥८॥

निर्जन पथ मे यात्रा करते, अतिशय प्यासाकुल होकर के।
सूखा मुँह साधु दीनभाव तज, चले प्यास को सहकर के ॥९॥

रुक्षवृत्ति आरभ - रहित, मुनि कभी शीत से पीडित हो।
मर्यादा - लघन करे नही, जिनशासन सुनकर स्थिर मन हो ॥१०॥

शीत - निवारण स्थान नही, छवि रक्षक भी कुछ वस्त्र नही।
पावक से सर्दी दूर करूँ, ऐसा मुनि चिन्तन करे नही ॥११॥

तप्तभूमि के तापो से, या ग्रीष्म सूर्य के दाहो से।
पीडित हो सुख के हेतु सत, आकुल न करे मन आहो से ॥१२॥

उष्ण ताप से तप्त प्राज्ञ मुनि, स्नानेच्छा ना मन लावे।
करे न गीला तन जल से, पखे बीजन न हवा खावे ॥१३॥

दश - मशक के डसने पर, समरस हो मुनि दु ख सहन करे।
सग्रामशीर्ष पर शूर नाग, सम राग रोष का विजय करे। १४॥

त्रस्त न हो, ना दूर हटावे, मन मे भी ना द्वेष करे।
रक्त मास खाते ना मारे, सतत उपेक्षाभाव धरे ॥१५॥

फटे जीर्ण वस्त्रो के कारण, वस्त्र - रहित हो जाऊँगा।
मन मे न भाव ऐसा लाये, अब नए वस्त्र को पाऊँगा ॥१६॥

कभी अचेलक होता है, स्थिति वश सचेल भी हो जाता।
दोनो को धर्मार्थ जान, ज्ञानी अदीन-मन बन जाता ॥१७॥

ग्रामानुग्राम विचरण करते, अनगार अकिंचन व्रतधारी।
यदि अरतिभाव मन आ जाए, तो सहन करे समताधारी ॥१८॥

हिंसादि विरत आत्मा - रक्षित, जो अरति भाव को दूर करे।
धर्म मार्ग आरभ - रहित, उपशान्त भाव हो मुनि विचरे ॥१९॥

हैं नर के लिए बध कारण, ये स्त्रिया लोक मे बहुत सबल।
लेता है जान बात जो यह, उसकी जग मे साधुता सफल ॥२०॥

है पकभूत नारी मुनि हित, यह बात सदा ही ध्यान धरे।
ना सयम - घात करे उनसे, निज आत्म-गवेषी हो विचरे ॥२१॥

हो एकाकी सम्यग् विचरे, मुनि जीत परीषह को जग मे।
गाँव नगर या रजधानी मे, शुद्धाहारी जनपद मे ॥२२॥

नही गृही सम विचरे मुनिवर, ममता का न भाव धरे।
रहेगृही जन से अलिप्त, और अनिकेतन होकर विचरे ॥२३॥

तरु - मूल शून्य घर या मशान, रागादि रहित हो ध्यान धरे।
चाचल्य - रहित होकर बैठे, ना अन्य किसी को त्रस्त करे ॥२४॥

उन स्थानो पर बैठे मुनि को, उपसर्ग कदाचित आ जावे।
शका से भयभीत चित्त, अन्यत्र न उठ करके जावे ॥२५॥

अच्छी बुरी वसति पाकर, तपसी मुनि मन मे धैर्य धरे।
मर्यादा-लघन करे नही, वह पाप दृष्टि अतिक्रमण करे ॥२६॥

पशु-पण्डक-वनिता रहित स्थान, अच्छा अथवा प्रतिकूल मिले॥
एक रात मे क्या होता ?, यो ज्ञान भाव से दुख सह ले ॥२७॥

आक्रोश करे कोई मुनि को, उन पर मन मे ना रोष धरे।
क्रोधी होता है बाल - सदृश, इसलिए भिक्षु ना क्रोध करे ॥२८॥

दारुण कठोर अप्रियभाषा, सुन कर न सयमी क्रोध करे।
मौनभाव धर करे उपेक्षा, उनका मन मे ना ध्यान धरे ।।२९।।

पीटा जाकर ना क्रोध करे, मन को भी दूषित करे नही।
क्षमाभाव को श्रेष्ठ जान, मुनि धर्म भाव मन धरे सही ।।३०।।

श्रमण जितेन्द्रिय मुनिवर पर, यदि कोई कही प्रहार करे।
है नाश जीव का कभी नही, मुनि ऐसा चिन्तन किया करे ।।३१।।

दुष्कर है अनगार भिक्षु का, नित्य याचना कर खाना।
अशनादिक सब याचित मिलते, याञ्चा विना न कुछ पाना ।।३२।।

गोचराग्र मे प्रविष्ट मुनि को, कर पसारना सरल नही।
श्रेष्ठ अत घर का निवास है, मुनि चिन्तन यो करे नही ।।३३।।

गृहपति घर भोजन बनने पर, अन्नादि एषणा श्रमण करे।
चाहे पिण्ड मिले या ना भी, मुनि मन ना अनुताप धरे ।।३४।।

आज नही मैं पाया हूँ, सभव है कल मिल जायेगा।
जो इस प्रकार चिन्तन करता, उसको अलाभ ना दु ख देगा ।।३५।।

उत्पन्न रोग के होने पर, तन पीडा से मन दु ख धरे।
दीनभाव तज स्थिरमति हो, मुनि कष्ट हृदय से सहा करे ।।३६।।

सावद्य चिकित्सा ना चाहे, ना करे करावे दु ख सहे।
निश्चय उसका श्रामण्य यही, आत्मान्वेषी स-समाधि रहे ।।३७।।

जो रुक्ष शरीर अचेलक है, उस सयत घोर तपस्वी को।
तृण पर सोते से होती है, तन पीडा सत यशस्वी को ।।३८।।

ग्रीष्मकाल आतप गिरने से, अतुल वेदना पाते है।
यह जान तृणो से पीडित मनि, पट का उपयोग न लाते है ।।३९।।

पक धूल या ग्रीष्म ताप से, मैल वदन पर जमा करे।
परिताप-खिन्न मेधावी मुनि, साताहित नही विलाप करे ॥४०॥

कर्म निर्जरा कष्ट सहे मुनि, श्रेष्ठ धर्म निर्दोप यही।
तन वियोग तक हर्षित मन हो, मैल वदन पर धरे सही ॥४१॥

सत्कार निमन्त्रण अभिवादन, जो राज्य स्वामिकृत प्राप्त करे।
उनकी वाछा करे न मन मे, ना धन्य शब्द मुख से उचरे ॥४२॥

मन्दकपायी अल्पचाह, अज्ञात एपणा करता है।
रस - गृद्ध न वनता हो लोलुप, और प्राज्ञ खेद ना धरता है ॥४३॥

निश्चय ही मैने कर्म किये, है ज्ञान-निरोधक दु खकारी।
पूछा जाने पर कही किसी से, मै जान न पाता हितकारी ॥४४॥

अज्ञान-फलप्रद कर्म किये, जो उदय समय पर आते है।
यो कर्म विपाक समझ मुनिवर, मनको आश्वस्त बनाते है ॥४५॥

मै व्यर्थ हुआ मैथुन-निवृत्त, इन्द्रिय मन गोपन व्यर्थ किया।
है धर्म शुभद या पाप मूल, प्रत्यक्ष न इसका ज्ञान लिया ॥४६॥

तप उपधान ग्रहण करके, प्रतिमा का पालन करता हूँ।
इस चर्या से विहरण कर भी, ना छद्म दूर कर पाता हूँ ॥४७॥

निश्चय ही परलोक नही, तपसी जन की भी ऋद्धि कही।
अथवा मैं ठगा गया जग मे, यो मुनि शका मन करे नही ॥४८॥

हुए कई जिन वर्तमान है, और कई आगे होगे।
कहने वाले मिथ्या कहते, यो कभी नही मुनि सोचेगे ॥४९॥

ये सभी परीषह काश्यप ने, दु'ख सहने को हैं बतलाये।
जिन मे से कोई कही लगे, भिक्षु क न कभी भी घबराये ॥५०॥

□□

३. चतुरगीय

परम अग जग मे ये दुर्लभ, चार मोक्ष के साधन हैं।
मनुज जन्म एव श्रुति श्रद्धा, सयम मे वीर्य प्रकाशन हैं ॥१॥

करके नानाविध कर्म जीव, ससार वीच आ जाता है।
नाना प्रकार के गोत्र जाति मे, विविध रूप धर छाता है ॥२॥

कभी स्वर्ग के देवो मे, और कभी नरक मे जाते है।
ये प्राणी निज - कृत कर्मो से, आसुर भव को भी पाते हैं ॥३॥

एक समय क्षत्रिय होता, वोक्कस चण्डाल भी होता है।
वह कीट पतगा और कुन्थु, चीटी के भव मे आता है ॥४॥

यो कर्म-पाप से दवे जीव, आवर्त योनियो मे करते।
सब काम भोग पा क्षत्रिय सम, भव से निर्वेद नही धरते ॥५॥

जो कर्म सग से मूढ जीव, दु खित अति पीडा पाते है।
धर्म-हीन तीनो गतियो मे, फिर-फिर वे गोते खाते है ॥६॥

प्रतिवन्धक कर्मो के क्षय से, अनुक्रम से ऊपर आता है।
उससे विशुद्धि पाकर प्राणी, फिर मानव तन ले पाता है ॥७॥

मानव शरीर को पाकर भी, सद् धर्म श्रवण दुर्लभ जन मे।
जिसको सुनकर जन ग्रहण करे, तप क्षमा अहिसा जीवन मे ॥८॥

मिला भाग्य से धर्म - श्रवण, श्रद्धा दुर्लभ ना पाते हैं।
सुनकर भी सच्चा मोक्ष मार्ग, पथभ्रष्ट कई हो जाते हैं ॥६॥

श्रुति एव श्रद्धा पाकर भी, दुर्लभ पौरुष है शिव पथ मे।
रुचि करके सयम श्रेणी पर, चलते न कभी वे इस पथ मे ॥१०॥

मानव तन पा जो धर्म - श्रवण, करता उसमे श्रद्धा रखता।
वह तप मे वीर्य लगा सवृत हो, कर्म धूलि को है धुनता ॥११॥

है शुद्धि सरल मनकी होती, शुचि मन मे धर्म निवास करे।
निर्वाण परम वह पाता है, घृतसिक्त अग्नि सम ज्योति धरे ॥१२॥

कर दूर बध के कारण को, क्षान्त्या सयम का सचय कर।
वे उच्च दिशा को जाते है, अपना यह पार्थिव तन तज कर ॥१३॥

विविध शील व्रत का पालन कर, देव उत्तमोत्तम बनते।
महा शुक्ल सम दीप्तिमान हो, नही च्यवन को मन धरते ॥१४॥

दैवी भोगो मे अर्पित हो, इच्छारूपी वे रहते हैं।
पूर्व वर्ष शत दीर्घकाल तक, ऊर्ध्वकल्प मे वसते हैं ॥१५॥

उन कल्पो मे यथायोग्य रह, देव समय पर च्युत होते।
मनुज योनि मे आकर के, दश अग पुण्य से वे पाते ॥१६॥

क्षेत्र वास्तु हिरण्य स्वर्ण, पशुदास अगरक्षक होते।
ये चार जहाँ हो काम स्कन्ध, उस कुल मे वे पैदा होते ॥१७॥

अच्छे, मित्र ज्ञाति उत्तम हो, गोत्र - वर्ण भी शुभ पाते।
रोग - रहित प्रज्ञा - बलधारी, ख्यात कुलीन सबल होते ॥१८॥

मानव के अनुपम भोगो का, जीवन भर अनुभव करते।
पूर्व - विशुद्ध धर्म कारण से, निर्मल बुद्धि प्राप्त करते ॥१९॥

दुर्लभ चारो अग जानकर, सयम गुण मे चित्त धरे।
तप से कर्म मैल धोकर के, शाश्वत शिव पद प्राप्त करे ॥२०॥

४. असस्कृत

छोड प्रमाद, जुडे ना जीवन, जरसोपनीत का त्राण नही ।
यो जान प्रमादी हिंस्र-असयत, लेगे किसकी शरण कही ? ॥१॥

पाप - प्रवृत्ति से यदि कोई, मानव वैभव को पाता है ।
धन छोड वैर से बधा देख लो, नरक लोक वह जाता है ॥२॥

ज्यो चोर सेधमुख पर पकडा, निज कर्म विवश काटा जाता ।
ऐसे यह जीव उभय भव मे, बिन भोगे कर्म न छुट पाता ॥३॥

पर के कारण जो ससारी, साधारण कर्म कमाता है ।
कर्म भोग के समय नही, बान्धव जन भाग बटाता है ॥४॥

धन से विषयी को त्राण नही, इस भव मे अथवा पर-भव मे ।
बुझ गये दीपवत् अति मोही, देखे पथ भी न चले वन मे ॥५॥

सुप्त जनो मे भी ज्ञानी, प्रतिबुद्ध भरोसा करे नही ।
निर्बल शरीर क्षण वडा निठुर, भारण्ड सम करे प्रमाद नही ॥६॥

मुनि चले दोष से शंकित हो, थोडा भी दोष बन्धन समझे ।
हो लाभ जहाँ तक तन पोषण, विन लाभ देह का मोह तजे ॥७॥

इच्छानिरोध से मुक्ति मिले, ज्यो शिक्षित हय वर्मनधारी ।
पूर्व वर्ष चल अप्रमत्त हो, शीघ्र मुक्ति ले व्रतधारी ॥८॥

जो पूर्व नही मिलता पीछे भी, निश्चय यह शाश्वत वाद कहे ।
पर शिथिल आयु मे काल जनित, तनभेद देख मन खेद लहे ।।९।।

शीघ्र विवेक न पा सकता, उठ अत काम सुख त्याग करो ।
यह लोक जान समभाव रमो, आत्मार्थी जागृत हो विचरो ।।१०।।

बार बार मोहादि जीतते, उग्र विहारी मुनि जन को ।
विविध विषम परिषह दु ख देते, मन से न सत सोचे उनको ।।११।।

अनुकूल स्पर्श मन ललचाते, वैसे मे मन ना प्रीति धरे ।
कर क्रोध दूर और मान हटा, माया सेवे ना लोभ करे ।।१२।।

परवादी सधेय-आयु को, राग द्वेषवश हो कहते ।
धर्म शून्य उनका मन तज, गुण अर्जन अन्तिम दम करते ।।१३।।

□□

५. अकाम-मरणीय

दुस्तर महाप्रवाही भवनिधि, ज्ञानी जन ने पार किया।
उनमे एक पूर्णज्ञानी ने, स्पष्ट रूप मे बोध दिया ॥१॥

दो मरणान्तिक स्थान शास्त्र मे, वीर प्रभु ने बतलाये।
एक अकाम, सकाम दूसरा, मरण भेद हैं दिखलाये ॥२॥

होता मरण अकाम बाल-जीवो का बारम्बार जहाँ।
प्राज्ञव्रती का एकबार, होता सकाम है मरण यहाँ। ३॥

प्रभु ने पहले बाल मरण को, उन दोनो मे बतलाया।
जैमे कामासक्त बालजन, क्रूर कर्म है अपनाया ॥४॥

आसक्त काम भोगो मे जो, वह कूट लोक को जाता है।
परलोक न देखा है हमने, रति भोग दृष्टि मे आता है ॥५॥

हैं कामभोग कर मे आये, सशय मे कल के भोग यहाँ।
है किसे पता परलोक रम्य, उत्तर इसका है स्पष्ट कहाँ ॥६॥

रहना जनता के सग सोच, यो बाल ढिठाई करता है।
काम भोग मे राग-विवश, हो क्लेश-पाश मे पडता है ॥७॥

त्रस या स्थावर जीवो पर, करता वह दण्ड प्रयोग यदा।
प्राणी हिसा मे कारणवश, या निष्कारण रत रहे सदा ॥८॥

है हिंसक बाल मृषावादी, मायावी पिशुन धूर्त मानो।
मद्य मास सेवन कर जग मे, श्रेय मानता वह जानो ॥९॥

वह मत्त वचन तन से रहता, धन नारी मे आसक्त सदा।
शिशुनाग सदृश दोनो मुख से, मल सचय करता यदा कदा ॥१०॥

फिर रोगग्रस्त हो अज्ञानी, बन ग्लान तप्त मन होता है।
निज अशुभ कर्मका चिन्तन कर, पर लोक भीत हो रोता है ॥११॥

दु शील जनो की नरको मे, दुर्गति मैंने जो कान सुनी।
क्रूर कर्मयुत बाल जीव की, गाढ वेदना करुणधुनी ॥१२॥

है स्थान नरक मे यथा दुखद, मैंने शास्त्रो से जाना है।
कर्मानुसार जाता प्राणी, वह पीछे मन पछताता है ॥१३॥

जैसे सारथि छोड सुपथ को, जान कुपथ रथ ले जावे।
विषम मार्ग मे अक्ष टूटने, पर चिन्तित वह हो जावे ॥१४॥

यो धर्म मार्ग को छोड मूढ जो, पाप मार्ग पर चलता है।
टूटे अक्ष-सारथि सम वह, मृत्यु समय दु ख धरता है ॥१५॥

वह मूर्ख मृत्यु की बेला मे, परलोक ताप से डरता है।
जूए मे विजित जुआरी सा, निश्चय अकाम वह मरता है ॥१६॥

अज्ञानमरण यह बालो का, है वीर प्रभु ने बतलाया।
अब मुझ से सुने सकाम मरण, ज्ञानी ने जिसको अपनाया ॥१७॥

है पुण्यवान् का मरण सुना, जैसा मैंने है समझ लिया।
आघात रहित अतिहर्षयुक्त, विजितेन्द्रिय मुनि ने ग्रहण किया ॥१८॥

पाते न मरण यह सभी भिक्षु, और नही गृहस्थो मे सारे।
विविध रूप व्रतधरे गृही जन, विषमरीति मुनिव्रत धारे ॥१९॥

होते कई गृहस्थ श्रमण से, बढ करके धर्म विरतिधारी।
पर सभी गृहस्थो से बढकर, होते मुनि जन सयमधारी ॥२०॥

गेरुवस्त्र मृगचर्म नग्नता, जटाकथ सिरका मुण्डन।
दु शीलव्रती के लिए कभी, ये सभी न कर सकते रक्षण ॥२१॥

भिक्षाजीवी भी शीलहीन, ना मुक्त नरक से होते है।
भिक्षुक अथवा हो गृहवासी, सद्व्रती स्वर्ग-पद पाते है ॥२२॥

श्रावक श्रद्धालु निज तन से, सामायिकादि सेवन करते।
दोनो पक्षो मे पौषधव्रत, ना एक रात्रि भी कम धरते ॥२३॥

ऐसी शिक्षा से युक्त गृही, यदि सुव्रत पालन करता है।
तजके औदारिक तन अपना, वह देवलोक पद धरता है ॥२४॥

सवरयुत जो साधु यहाँ, दो गति मे से वे कोई पाते।
होते हैं दु ख मुक्त अथवा, फिर ऋद्धिमान् सुरवर होते ॥२५॥

है उत्तम आवास देव का, क्रमश मन्द मोह-द्युतिमान्।
महायशस्वी देवो से वह, भरा हुआ लगता छविमान् ॥२६॥

दीर्घ आयु ऋद्धि के धारक, कामरूप ज्योतिर्धारी।
तत्काल उदित दिनमणि जैसे, तेजस्वी प्रखर किरणधारी ॥२७॥

हो भिक्षाजीवी या गृहस्थ, उपशान्त हृदय जो होते हैं।
सयम तप साधन करके वे, उन श्रेष्ठ पदो मे जाते हैं ॥२८॥

उन दान्त सयमी पूज्य जनो का, सुन शिक्षाप्रद यह वर्णन।
शीलवन्त बहुपाठी मुनि, पाते न त्रास जब धरे मरण ॥२९॥

युगल मरण की तुलना कर, ले दयाधर्म का सार विशेष।
क्षान्त्या प्रसन्न मन मेधावी, हो तथाभूत मन जीवन शेष ॥३०॥

मरण समय की इष्ट घडी मे, श्रद्धालु निर्भय चित्तधरे।
गुरु चरणो मे अनशन करके, देहत्याग का भाव करे।

मरण घडी आने पर मुनि, अनशन से तन का त्याग करे।
तीन सकाम-मरण मे कोई, एक मरण स्वीकार करे।।

६. क्षुल्लक निर्ग्रन्थीय

जितने विद्याहीन पुरुष, वे जग मे दु:ख वढाते है।
बहुधा अनन्त इस भव-सागर, मे मूढ कठिन दुख पाते है ॥१॥

जीव योनि के जाति पथो को, पाश जान पण्डित भारी।
स्वय सत्य की खोज करे, जग जीवो से मैत्रीधारी ॥२॥

जननी जनक स्नुषा भाई, पत्नी और पुत्र नही अपना।
निज कर्मभोग से पीडित जन का, त्रायक साथी है सपना ॥३॥

यह अर्थ समझ निज प्रज्ञा से, सम्यग्दर्शी यह भाव धरे।
आसक्ति, स्नेह का मूल काट, परिचित जनकी ना चाह करे ॥४॥

गो अश्व और मणिकुण्डल ये, पशु सेवक जन समुदाय सभी।
इन सबकी सगति को तजकर, वह कामरूप हो देव कभी ॥५॥

स्थावर जगम धनधान्य तथा, उपलब्ध अन्य साधन सारे।
कर्मो से पीडित प्राणी के, ये दु ख भोग को ना टारे ॥६॥

अपने सम देखो सव जग को, सुख और आयु वल है प्यारा।
भय वैरो से उपरत हो, मत वनो जीव का हत्यारा ॥७॥

परधन का सग्रह नरक हेतु, यो जान न तृण भी ग्रहण करे।
पाप-भीरु मुनि निज पात्रो मे, दिया अन्न स्वीकार करे ॥८॥

यो कतिपय वादी मान रहे, पापो का विन परित्याग किये।
आचार मात्र की शिक्षा से, ही सम्पूर्ण दुःख की मुक्ति लिये ॥९॥

बन्ध-मोक्ष के परिज्ञाता, परमार्थ कहे पर चले नही।
वचन मात्र से जोर दिखा, आश्वस्त स्वय को करे सही ॥१०॥

नाना भाषा और विद्या के, बल से भी त्राण नही पाते।
पापकर्म मे सने मूढ, पण्डित ज्ञानी धोखा खाते ॥११॥

जो इस शरीर मे मूर्छित हो, मन वचन काय से प्रीतिधरे।
वर्ण रूप मे सर्वभाव से, मोहित हो दु ख की वृद्धि करे ॥१२॥

अमित विश्व मे दीर्घ मार्ग पा, सोच समझ कर चरण धरे।
अत देख कर सभी दिशा को, अप्रमत्त हो मुनि विचरे ॥१३॥

उच्च लक्ष्यधर भव बाहर के, विषयो की काक्षा करे नही।
सचित कर्मो का क्षय करने, इस तन को धारण करे सही ॥१४॥

कर्म हेतु को दूर हटा, कर्तव्य काल का ध्यान करे।
अशन पान की मात्रा कर, निर्दोष पिण्ड पा देह धरे ॥१५॥

रजनी मे साधु नही रक्खे, वे लेप मात्र अन्नादिक पास।
ले पात्र चले खगवत् निस्पृह, मन मे अदम्य धर के विश्वास ॥१६॥

एषणा सहित लज्जायुत मुनि, अनियत ग्रामादिक मे विचरे।
हो अप्रमत्त गृहवासी से वह, पिण्डपात की खोज करे ॥१७॥

इस तरह श्रेष्ठ ज्ञानी-दर्शी, अतिश्रेष्ठ ज्ञान दर्शनधारी।
अर्हन् वैशालिक ज्ञातपुत्र, व्याख्यान किए जनहितकारी ॥१८॥

*

७. उरभ्रीय

उद्देश्य अतिथि को ज्यो कोई, बकरे का पोषण करता है।
चावल जौ खाने को देकर, आँगन मे रक्षण करता है।१॥

पीछे वह बकरा पुष्ट हुआ, बढ गया मेद बल स्थूलोदर।
अतितृप्त विपुल बल का धारी, आदेश प्रतीक्षा करता घर ॥२॥

जब तक न अतिथि आता घर पै, तब तक वह दुखी जीता है।
शिर काट अतिथि के आने पर, फिर घर मे खाया जाता है ॥३॥

जैसे निश्चय ही वह बकरा, मेहमान नाम पर पलता है।
वैसे अधर्मयुत अज्ञानी, नरकायु बंध मन धरता है ॥४॥

हिंसक मूर्ख मृषावादी, पथिको का धन हरने वाला।
मायावी चोर धूर्ततायुत , पर वस्तु हरण की मतिवाला ॥५॥

नारी और विषय-मूर्छित, आरभ परिग्रह अतिधारी।
जो सुरा मास का भोगी है, बलवान् तथा पर-अपकारी ॥६

कर्करध्वनि से जो खाता है, अजवत् तुन्दिल अति रक्त भरा।
नर नरक आयु का अभिलाषी, ज्यो अतिथि हेतु अज मरे खरा ॥७॥

आसन शय्या रथ वित्तकाम, जीभर के भोग चले जग से।
बहु कष्ट साध्य धन छोड चले, अतिकर्म धूलि के सचय से ॥८॥

फिर जीव कर्म से भारी हो, प्रत्यक्ष जगत मे मन धरता।
बकरे की भाँति अतिथि आए, मरणान्त समय चिन्ता करता ॥६॥

जब आयुक्षीण हो जाती हे, हिंसक शरीर तजकर जाता।
आसुरी दिशा मे अज्ञानी, तम भरे नरक मे दु ख पाता ॥१०॥

जैसे काकणी के हेतु मनुज, है हार हजार यहाँ जाता।
खाकर अपथ्य फल आम्र भूप, लालच मे राज्य गँवा जाता ॥११॥

है तुच्छ काम-सुख मनुजो का, ऐसे ही सुर सुख के आगे।
देवो का भोग और जीवन, नर से हजार गुण है आगे ॥१२॥

होती असख्य वर्षो की है, दिवि प्राज्ञ जनो की आयु नही।
जिनको दुर्मेधा विपयी बन, करता शताब्द मे नष्ट यहाँ ॥१३॥

जैसे तीन वणिक घर से, पूँजी लेकर परदेश गए।
ले लाभ एक लौटा दूजा, घर आया केवल मूल लिए ॥१४॥

एक गँवा पूँजी अपनी, घर आया खाली हाथ लिए।
व्यवहार क्षेत्र की यह उपमा, यो धर्मक्षेत्र मे ग्रहण किए ॥१५॥

ऐसे मानुष भव मून समझ, देवत्व लाभ कहलाता है।
निश्चय नारक तिर्यंच रूप, जीवन धन हानि कहाता है ॥१६॥

मूढ जीव की दो गतिया, हिसा मूलक होती भारी।
रस-लोलुप शठ अमरत्व और, नरभव बाजी देता हारी ॥१७॥

सद् गति खोकर जो जाता है, तिर्यक् नारक दो दुर्गति मे।
दुर्लभ उसका ऊपर आना, चिरकाल बिताकर सद्गति मे ॥१८॥

नर सुर भव हारे जन को लख, पण्डित वालो की तुलना कर।
मानवी योनि मे जो आते, वे मूल सम्पदा को धरकर ॥१९॥

पाकर अनेक विध शिक्षा को, जो गृही व्रतो मे चित्त धरे।
मानुषी योनि को वे पाते, फल सत्य कर्म अनुसरण करे ॥२०॥

जिनको अतिशिक्षा प्राप्त हुई, वे मूल गुणो के पार गए।
शीलवान् सविशेष गुणी, तज दैन्य अमरपद प्राप्त किए ॥२१॥

यो जान अदीन गृही या मुनि को, साधक फिर लाभ गवाए क्यो।
विषयो से विजित हुआ प्राणी, विकृति से आँख मिलाये क्यो ॥२२॥

जैसे कुशाग्र के जल कण का सागर से कोई माप करे।
वैसे मानव का इन्द्रिय-सुख, सुर सुख के सम्मुख मूल्य धरे ॥२३॥

है कुशाग्रवत् तुच्छ सौख्य, सक्षिप्त आयु भी मानव का।
फिर कौन हेतु आगे करके, ना योग क्षेम समझे निज का ॥२४॥

जग मे जो काम-निवृत्त नही, उसका आत्मार्थ न हो पाता।
भवतारक पथ को सुनकर भी, जो बारबार विचलित होता ॥२५॥

जो काम भोग से दूर हुआ, उसका निज-लाभ नही जाता।
मल मलिन देह तज कर, उसका सुर होना आगम बतलाता ॥२६॥

ऋद्धि कान्ति यश उच्च वर्ण, आयुष्य सौख्य भी श्रेष्ठ जहाँ।
वैसे कुल मे च्युत हो स्वर से, लेते हैं फिर वे जन्म वहाँ ॥२७॥

बालत्व देख अज्ञानी का, जो पाप कर्म स्वीकार करे।
तज धर्म अधर्मीरुचि वाला, नरको मे जा दुख सहन करे ॥२८॥

धीर पुरुष का धैर्य देख, क्षान्त्यादि धर्म अनुसरण करे।
तज पाप धर्म मे लीन बना, वह देव लोक मे जन्म धरे ॥२९॥

बाल अबाल भाव की तुलना, कर पण्डित निर्णय करता।
बालभाव को तज करके, मुनि विज्ञभाव सेवन करता ॥३०॥

★

८. कापिलीय

यह नश्वर और अशाश्वत जग, जो प्रचुर दु ख का स्थानक है।
मैं करू यहाँ पर कौन कर्म, जो दुर्गति दु ख निवारक है ॥१॥

छोड पूर्व सम्बन्ध साधुजन, स्नेह किसी से करे नही।
स्नेही जन मे स्नेह-रहित हो, दोष-रोप से मुक्त सही ॥२॥

फिर पूर्ण ज्ञान दर्शन से युत, सब जीवो के श्रेयस्कामी।
उनके विमोक्ष हित वीतराग, मुनिधर्म कहे आत्मारामी ॥३॥

है बन्ध हेतु सम्पूर्ण परिग्रह, तजे तथाविध कलहो को।
काम-जाल मे दोष देख, रक्षक मुनि दूर रखे मन को ॥४॥

भोग रूप आमिष-रत प्राणी, हित पथ से उलटी बुद्धि धरे।
मूढ मदमति अज्ञानी, मक्खी सम मल मे उलझ पडे ॥५॥

ये कठिन त्यागने योग्य काम, न सहज त्याज्य कायर जनको।
पोतवणिक् सम व्रती साधु, तरते दुस्तर भव सागर को ॥६॥

अज्ञान भाव से हिंसा कर, अपने को श्रमण बताते है।
पापदृष्टि से बाल जीव, मतिमन्द नरक मे जाते है ॥७॥

हिंसादि पाप के अनुमोदक, ना मुक्ति दुखो से पाते है।
जिन ने सद्धर्म प्रबोध दिया, वे ही ऐसा बतलाते है ॥८॥

अतिपात न करता प्राणो का, वह समितिमान् कहलाता है।
उस त्रायी का सब पाप कर्म, थल से जल सम बह जाता है ॥९॥

जितने त्रस स्थावर जीव जगत के, आश्रय मे रहने वाले।
मन वचन काम से कभी नही, उनको वध बन्धन मे डाले ॥१०॥

शुद्ध एषणा समझ साध, मन उसमे सुस्थिर कर डाले।
सयम निर्वाह हेतु भोजन ले, रस लोलुपता को टाले ॥११॥

नीरस शीतपिंड सेवे मुनि, रुक्ष पुराने उडद-असार।
जीवन यापन को बैर चूर्ण, लेवे इनका भी शुद्धाहार ॥१२॥

लक्षण, स्वप्न, अगविद्या का, जो मुनि जन मे करे प्रचार।
नही श्रमण की मर्यादा यह, आचार्यो ने कहा पुकार ॥१३॥

अनियन्त्रित जीवन रख भव मे, जो समाधि-पथ से गिरते हैं।
वे काम-भोग रस मे मूर्छित, हो असुर योनि को पाते है ॥१४॥

फिर असुर योनि से च्युत होकर, भव मे बहु चक्कर खाते है।
प्रचुर कर्म से लिप्त हुए वे, बोधि-सुलभ ना पाते है ॥१५॥

धन धान्यो से पूर्ण लोक यह, दिया एक को यदि जाये।
सन्तुष्ट नही होता उससे, इच्छा दुप्पूर न भर पाये ॥१६॥

जैसा लाभ लोभ भी वैसा, लोभ लाभ से वढता है।
दो माशे का कार्य लोभ वश, क्रोडो से ना भरता है ॥१७॥

नारी मात्र मे प्रीति करो ना, हृदय गाठ, पर चित्त चपल।
जो लुभा पुरुष को दास रूप, से खेला करती है प्रतिपल ॥१८॥

नारी तन पर ना प्रीति करे, स्त्री त्यागी जो अनगारी।
त्यागधर्म को श्रेष्ठ जान, भिक्षुक मन स्थिरता ले धारी ॥१९॥

यही धर्म था कहा कपिल ने, निर्मल प्रज्ञाधारक ने।
धर्म करें वे पार लगेंगे, सब लोक सुधारे साधक ने ॥२०॥

★

६. नमिप्रव्रज्या

अमर लोक से च्युत होकर, नमि ने नर भव मे जन्म लिया।
उपशान्त मोह के होने से, निज पूर्व जन्म का स्मरण किया ॥१॥

पूर्व जन्म की स्मृति से नमि ने, श्रेष्ठ धर्म का बोध किया।
राज्य भार सुत को देकर, दीक्षा के हित निष्क्रमण किया ॥२॥

सुर लोक सदृश वर भोगो का, अन्त पुर मे उपभोग किया।
कर भोगबुद्ध नमि राजा ने, मन से भोगो को त्याग दिया ॥३॥

जनपद युत प्रिय मिथिलानगरी, सेना रनिवास तथा परिजन।
सब छोड शान्ति पथ निकल पडे, एकान्तवास मे स्थिर धर मन ॥४॥

मिथिला मे कोलाहल छाया, जब नमी प्रव्रज्या हेतु चला।
सब राज विभव तज राजर्षि, सयम पथ धारा बहुत भला ॥५॥

ज्ञानादि गुणो की उच्च भूमि, उद्यत हो नमि ने गमन किया।
विप्ररूपधारी सुरपति तब, निकट पहुँच यो कथन किया ॥६॥

राजर्षि ! आज इस मिथिला के, महलो मे पुर के घर-घर मे।
दारुण कोलाहल व्याप रहा, क्यो बाल वृद्ध सब के स्वर मे ॥७॥

यह हेतु और कारण प्रेरित, नमिराज अर्थ श्रुति गोचर कर।
सुरपति को बोले इस प्रकार, वाणी ज्ञानामृत से भर कर ॥८॥

था चैत्य वृक्ष मिथिला-पुर मे, सुन्दर शीतल छाया वाला।
फल पुष्प पत्र से लदा हुआ, खग गण सेवित बहुगुण वाला ॥९॥

हे विप्र ! एक दिन हवा चली, वह चैत्य वृक्ष तब उखड गया।
ये पक्षी रोते है आश्रित, जिनका सुनीड है उजड गया ॥१०॥

यह हेतु और कारण प्रेरित, देवेन्द्र वचन श्रुति गोचर कर।
राजर्षि नमी को यो बोले, अन्तर मे गहरा चिन्तन कर ॥११॥

यह अग्नि और पवन प्रेरित, जल रहा तुम्हारा मन्दिर है।
हे नाथ ! नही क्यो देख रहे, अन्तपुर जो जलने पर है ॥१२॥

यह हेतु और कारण प्रेरित, नमिराज अर्थ श्रुति गोचर कर।
सुरपति को बोले इस प्रकार, अन्तर मे गहरा चिन्तन कर ॥१३॥

हम सुख से वसते जीते है, ना यहा हमारा कुछ भी है।
मिथिला के जलने से मेरा, जलता न यहा पर कुछ भी है ॥१४॥

पत्नी पुत्रादिक के त्यागी, व्यवसाय विरत जो भिक्षुक है।
प्रिय अप्रिय कुछ भी नही वहा, मिट गई चाह जिनकी मन है ॥१५॥

है बहुत भद्र उस मुनिवर के, भिक्षाजीवी अनगारी के।
सर्व - सग से विप्रमुक्त, एकान्तरूप सुखधारी के ॥१६॥

यह हेतु और कारण प्रेरित, देवेन्द्र-वचन श्रुतिगोचर कर।
राजर्षि नमी को यो बोले, अन्तर मे गहरा चिन्तन कर ॥१७॥

राजन् ! परकोटा पुरद्वार, खाई शतमारक अस्त्र बना।
फिर चाहो तुम मुनि वन जाना, एकान्त तपी और शुद्ध मना ॥१८॥

यह हेतु और कारण प्रेरित, नमिराज अर्थ श्रुतिगोचर कर।
सुरपति को बोले इस प्रकार, वाणी ज्ञानामृत से भरकर ॥१९॥

श्रद्धा नगर अर्गला[१] तप सयम, शान्ति का दृढ प्राकार[२]।
मन वाणी काया से गोपित, रक्षा का मुनि करे विचार ॥२०॥

धनुष पराक्रम का करके, ईर्या को उसकी डोर करे।
धृति को मूठ बनाकर उसकी, बाँध सत्य से जोर धरे ॥२१॥

तप का तीर चढा धनु ऊपर, कर्मो का कचुक भेद चले।
हो मुक्त श्रमण इस सगर[३] से, ससार भ्रमण का अन्त करे ॥२२॥

यह हेतु और कारण प्रेरित, सुरराज अर्थ ऐसा सुनकर।
राजर्षि नमी को इस प्रकार, बोले फिर वचन भाव से भर ॥२३॥

बनवाओ प्रासाद भूप ! और वर्द्धमान सुन्दर शाला।
हो चन्द्रशाल उज्ज्वल शीतल, फिर मुनि होकर पकडो माला ॥२४॥

यह हेतु और कारण प्रेरित, नमिराज अर्थ मन मे लेकर।
सुरपति को बोले इस प्रकार, वाणी अनमोल ज्ञान से भर ॥२५॥

सशय निश्चय वह करता है, जो पथ ही मे बनवाता घर।
जाने की इच्छा जहाँ वहाँ, बनवाये शाश्वत अपना घर ॥२६॥

यह हेतु और कारण प्रेरित, सुरराज अर्थ ऐसा सुनकर।
राजर्षि नमी को इस प्रकार, बोले फिर वचन भाव से भर ॥२७॥

चोर लुटेरो गठकट्टो से, नागर जन को निर्भय करना।
करके कल्याण नगर का तुम, फिर भिक्षापथ पर पद धरना ॥२८॥

यह हेतु और कारण प्रेरित, नमिराज अर्थ श्रुतिगोचर कर।
सुरपति से बोले इस प्रकार, वाणी ज्ञानामृत से भर कर ॥२९॥

१ आगल २ परकोटा ३ युद्ध

बहुत बार मानव भ्रमवश, अस्थान दण्ड कर जाते है।
दण्डित होते हैं निरपराध, दोषी पूरे बच जाते है ॥३०॥

यह हेतु और कारण प्रेरित, देवेन्द्र वचन श्रुतिगोचर कर।
राजर्षि नमी को यो बोले, अन्तर से गहरा चिन्तन कर ॥३१॥

हे नरपति तेरे सन्मुख जो, भूपाल नही आके झुकते।
वश मे पहले उनको करके, क्षत्रिय ! फिर जाना तुम मन से ॥३२॥

यह हेतु और कारण प्रेरित, नमिराज अर्थ श्रुतिगोचर कर।
सुरपति को बोले इस प्रकार, वाणी ज्ञानामृत से भर कर ॥३३॥

दुर्जय रण मे दश लाख सुभट पर हँसते विजय मिलाता है।
अपने पर एक विजय करता, वह परम जयी कहलाता है ॥३४॥

कर युद्ध स्वय से बाहर मे, लडने से क्या फल मिलता है।
अन्तर्मन से दुर्भाव जीत, मानव हर्षित मन रहता है ॥३५॥

इन्द्रिय पाँच, क्रोध माया मद, लोभ दोष को जान लिया।
दुर्जय आत्मविजय कर निजको, जीते सब जग जीत लिया ॥३६॥

यह हेतु और कारण प्रेरित, देवेन्द्रवचन श्रुतिगोचर कर।
राजर्षि नमी को यो बोले, अन्तर मे गहरा चिन्तन कर ॥३७॥

विपुल यज्ञ का यजन करा, दे भोज्य श्रमण और ब्राह्मण को।
दो दान, भोग और यज्ञ करो, फिर पाना नृप ! मुनि जीवन को ॥३८॥

यह हेतु और कारण प्रेरित, नमिराज अर्थ ऐसा सुनकर।
सुरपति को बोले इस प्रकार, फिर वचन अमूल्य ज्ञान से भर ॥३९॥

दश लाख गाय जो मास मास, देता सयम मे हो सूना।
दे दान नही कुछ भी पर है, सयम का मूल्य सदा दूना ॥४०॥

यह हेतु और कारण प्रेरित, देवेन्द्र वचन श्रुतिगोचर
रार्जषि नमी को यो बोले, अन्तर मे गहरा चिन्तन

करके तुम त्याग गृहस्थाश्रम, अन्याश्रम की क्यो चाह
घर मे ही पौषधरत रहकर, राजन् ! सेवा का भाव

यह हेतु और कारण प्रेरित, नमिराज अर्थ श्रुतिगोचर
सुरपति को बोले इस प्रकार, वाणी ज्ञानामृत से भर क

जो बाल मास का तप करके, भोजन कुशाग्र भर है करत
श्रुत चरणधर्म की कलाषोडशी, भी वह प्राप्त नही करत

यह हेतु और कारण प्रेरित, देवेन्द्र वचन श्रुतिगोचर क
रार्जषि नमी को यो बोले, अन्तर मे गहरा चिन्तन क

सोना चादी मणि मुक्ता फल, कास्यादि वस्त्र वाहन सुखकर
इनसे निज कोष बढा राजन् !, पीछे मुनिव्रत को धारण कर

यह हेतु और कारण प्रेरित, नमिराज अर्थ श्रुतिगोचर कर
सुरपति को बोले इस प्रकार, अन्तर मे गहरा चिन्तन कर

सोने चादी के गिरि निश्चय, कैलाश तुल्य अगणित पाले
फिर भी न लुब्ध को जरा तोष, इच्छा अनन्त नल विस्तारे

जो चावल से भरी धरा यह, स्वर्ण और पशुओ के सग।
है न एक के हेतु बहुत, यह सोच धरे हम तप मे रग।

यह हेतु और कारण प्रेरित, देवेन्द्र वचन श्रुतिगोचर कर।
रार्जषि नमी को यो वोले, अन्तर मे गहरा चिन्तन कर॥

आश्चर्य ! वडे उन्नति क्षण मे, नृप ! त्याग भोग का करते है।
असत् काम की वाँछा से, सकल्पाहत तुम रहते है॥

यह हेतु और कारण प्रेरित, नमिराज अर्थ श्रुतिगोचर कर।
सुरपति को बोले इसप्रकार, वाणी ज्ञानामृत से भर कर ॥५२।

है काम शल्य और विष भारी, आशीविषवत् जीवन-हारो।
विन भोगे जाते दुर्गति मे, कामेच्छा ऐसी दुखकारो ॥५३॥

है क्रोध नीच पद पहुँचाता, अभिमान अधमगति देता है।
माया से सद्गति रुकती है, लोभी दोनो भव खोता है ॥५४॥

विप्र-रूप को छोड अमरपति, इन्द्ररूप धारण करके।
करते हुए स्तवन अभिवादन, इन मधुर स्वरो मे गा करके ॥५५॥

अहो। क्रोध को जीता तुमने, किया पराजित तुमने मान।
अहो। छोड दी माया तुमने, वश मे किया लोभ शैतान ॥५६॥

अहो। श्रेष्ठ है आर्जव तेरा, मार्दव भी है हितकारी।
सर्वोत्तम है क्षमा तुम्हारी, लोभ-त्याग विस्मयकारी ॥५७॥

इस भव मे तुम उत्तम हो, पर-भव मे भी होगे उत्तम।
कर्म धूलि से रहित सिद्धि, पद पाओगे तुम अति उत्तम ॥५८॥

यो करते हुए स्तवन सुरपति ने, उत्तम श्रद्धा से महिमा की।
करके प्रदक्षिणा वार वार, वन्दना नमी नरपति की की ॥५९॥

चक्र और अकुश चिह्नित, मुनि के चरणो मे नमन किया।
ललित चपल-कुण्डल किरीटधर, शक्र गगन मे उछल गया ॥६०॥

प्रत्यक्ष शक्र मे प्रेरित हो, नमि ने सयम मन रमा लिया।
तजकर भवनादिक वैदेही, श्रामण्य भाव मन अटल किया ॥६१॥

सवुद्ध विचक्षण पडितजन, जग मे ऐसा ही करते हैं।
हो दूर भोग से नमि नृपवत्, वे सयम पथ पर चलते हैं ॥६२॥

१०. द्रुम-पत्रक

ज्यो रजनीगण के जाने पर, तरु-पत्र पुराने जाते झर।
वैसे नश्वर मानव-जीवन, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥१॥

कुश-नोक[1] लटकते ओसबिन्दु, कुछ देर ठहरते ज्यो उस पर।
वैसे मानव का जीवन है, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥२॥

यह अल्पकाल की आयु और, जीवन बहु विघ्नो का है घर।
कर दूर पुराकृत कर्म धूलि, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥३॥

चिर दिन से भी सब जीवो को, मानव जीवन है दुर्लभतर।
होते है कर्म-विपाक तीव्र, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥४॥

पृथ्वी के भव मे जा प्राणी, उत्कृष्ट काल जीवन धर कर।
वसता वह काल असख्य वहाँ, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥५॥

अप्काय योनि मे जा प्राणी, उत्कृष्ट काल तक जीवन धर।
वसता वह काल असख्य वहाँ, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥६॥

तेजकाय भव जा प्राणी, उत्कृष्ट काल जीवन धर कर।
वसता वह काल असख्य वहाँ, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥७॥

---

१ घास की नोक

वायुकाय मे जा प्राणी, उत्कृष्ट काल जीवन धर कर।
वसता वह काल असख्य वहाँ, गौतम! प्रमाद क्षण का मतकर ॥८॥

है हरितकाय भव जा प्राणी, उत्कृष्ट काल जीवन धर कर।
वसता वह काल अनन्त वहाँ, गौतम! प्रमाद क्षण का मतकर ॥६॥

दो इन्द्रियकाय पहुँच प्राणी, उत्कृष्ट काल जीवन धर कर।
रहता सख्यामित[1] काल वहाँ, गौतम! प्रमाद क्षण का मतकर ॥१०॥

त्रीन्द्रियकाय पहुँच प्राणी, उत्कृष्ट काल जीवन धर कर।
रहता सख्यामित काल वहाँ, गौतम! प्रमाद क्षण का मतकर ॥११॥

चतुरिन्द्रिय योनि मे जा प्राणी, उत्कृष्ट काल जीवन धर कर।
रहता सख्यामित काल वहाँ, गौतम! प्रमाद क्षण का मतकर ॥१२॥

पंचेन्द्रियभव मे जा प्राणी, उत्कृष्ट काल जीवन धर कर।
सात आठ भव ग्रहण करे, गौतम! प्रमाद क्षण का मत कर ॥१३॥

देव नरक गति मे जा प्राणी, उत्कृष्ट काल तन धारण कर।
एक एक भव ग्रहण करे, गौतम! प्रमाद क्षण का मतकर ॥१४॥

यो कर्म शुभाशुभ से प्राणी, भवभव मे भटके तन धर कर।
विपयो मे भूला भान फिरे, गौतम! प्रमाद क्षण का मतकर ॥१५॥

दुर्लभ मानव भव पाकर भी, आर्यत्व मिलाना दुर्लभतर।
हैं दस्यु-म्लेच्छ,[2] कोडो ही नर, गौतम! प्रमाद क्षण का मतकर ॥१६॥

पाकर भी आर्यत्व पूर्ण, इन्द्रिय का पाना अति दुष्कर।
हैं कितने इन्द्रिय-विकल यहाँ, गौतम! प्रमाद क्षण का मतकर ॥१७॥

---

१ सख्यात २ चोर – अनार्य

अविकल पाचो इन्द्रिय पायी, पर उत्तम धर्म श्रवण दुष्कर।
है कुतीर्थसेवी कितने, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥१८॥

उत्तम धर्म श्रवण कर भी, श्रद्धा की प्राप्ति पुन दुष्कर।
मिथ्यात्व-निषेवक[1] जन होता, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥१९॥

धार्मिक श्रद्धा होने पर भी, कायिक आचरण महादुष्कर।
कितने यहाँ काम-गुण-मूर्च्छित, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥२०॥

हो रहा जीर्ण यह तन तेरा, होते ये केश धवल पक कर।
घट रहा श्रवणबल भी तेरा, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥२१॥

हो रहा जीर्ण यह तन तेरा, ये केशधवल होते पककर।
घट रहा नयनवल है तेरा, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥२२॥

हो रहा जीर्ण यह तन तेरा, होते हैं केश धवल पक कर।
घट रहा घ्राण-बल है तोर, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥२३॥

हो रहा जीर्ण यह तन तेरा, होते हैं केश धवल पक कर।
घट रहा तुम्हारा जिह्वाबल, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥२४॥

हो रहा जीर्ण यह तन तेरा, होते हैं केश धवल पक कर।
घट रहा स्पर्श का बल तेरा, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥२५॥

हो रहा जीर्ण यह तन तेरा, होते है केश धवल पक कर।
क्रमश सब बल हो रहै क्षीण, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥२६॥

फोडा पित्त तथा हैजा, करते अनेक रुज[2] तन मे घर।
जिनसे विनष्ट होती काया, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥२७॥

---

१ मिथ्यात्वी २ रोग

ज्यों शरद-कुमुद जल लिप्त न हो, यो स्नेह भाव को छेदन कर।
हो जा निर्लिप्त जगत से तू, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥२८॥

धन पत्नी को छोड प्रव्रज्या, से मुनिता के पथ बढकर।
वान्त भोग फिर मत पीओ, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥२९॥

बान्धव मित्र विपुल सचित, धन को पूरे मन से तजकर।
मत फिर से उनकी इच्छा धर, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥३०॥

निश्चय न आज जिनका दर्शन, पथ देशक भी ना एक नजर।
भवतारक पथ पर प्राप्त तुम्हे, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥३१॥

कण्टकयुत मिथ्या पथ तज के, अवतीर्ण हुए विस्तृत पथ पर।
निर्मल मन से उस पथ पर चल, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥३२॥

अबल भारवाही जैसे मत, विषम मार्ग अवगाहन कर।
पछताते उत्पथगामी फिर, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥३३॥

कर गया पार तू महा उदधि, तट पर आकर क्यो रहा ठहर।
कर जल्दी पार पहुँचने को, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥३४॥

तू सिद्धिलोक को पायेगा, शुभ क्षपक श्रेणि आरोहण कर।
शिव क्षेम अनुत्तरपद को पा, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥३५॥

सबुद्ध शान्त सयत होकर, तू ग्राम नगर मे विचरण कर।
कर शान्ति मार्ग का सवर्धन, गौतम ! प्रमाद क्षण का मतकर ॥३६॥

पद अर्थ सुशोभित श्रेष्ठ परम, ज्ञानी जन कथित वचन सुनकर।
गौतम गए सिद्धि गति को, निज राग द्वेष का छेदन कर ॥३७॥

११. बहुश्रुत पूजा

जो सयोग-विमुक्त भिक्षु है, स्वेच्छा व्रत धरता अनगार।
कहू, सुनो मुझसे तुम क्रम से, उनका कैसा है आचार ॥१॥

जो भी विद्या से हीन मनुज, गर्विष्ठ लोलुपी है होता।
अति अक्रमभाषी[1] अजितेन्द्रिय, अविनीत अबहुश्रुत कहलाता ॥२॥

जिन पाँचो कारण से नर को, शिक्षा की प्राप्ति न हो पाये।
वे हैं आलस्य प्रमाद क्रोध, और रोग मान मन अकुलाये ॥३॥

आठ गुणो से युक्त मनुज, शिक्षा का होता अधिकारी।
ना हास्यशील और दान्त सदा, ना मर्म प्रकाशे दुखकारी ॥४॥

चारित्रहीन ना विकृतिशील[2], अतिशय रस लोलुप हो न कभी।
क्रोध न करे सत्यरत होवे, कहलाये शिक्षाशील वही ॥५॥

चौदह स्थानो मे वर्तमान, मुनि विनयहीन है कहलाता।
अपने ही दोषो के कारण, वह मुक्त नही है हो पाता ॥६॥

करता जो बारम्बार क्रोध, या क्रोध टिका कर रखता है।
ठुकराता प्रेमी की मैत्री, श्रुत पाकर जो मद करता है ॥७॥

---

१ अनर्गल बोलने वाला

२ विगय का सेवन करने वाला

अपमान करे जो पर त्रुटि पर, जो मित्रो पर भी क्रोध करे।
प्रिय मित्र जनो का भी जग मे, एकान्त पाप का कथन करे ॥८॥

जो असम्बद्धभाषी द्रोही, दर्पी, लोभी, मन - अनुगामी।
स भाग-रहित[1] अप्रीतिपात्र, अविनीत न होता शुभकामी ॥९॥

पन्द्रह सद्गुण के धारण से, सुविनीत मनुज कहलाता है।
जो नम्र अचचल कपट-हीन, मन मे न कुतूहल लाता है ॥१०॥

हो क्रोध अल्प करने वाला, रखता न टिकाकर क्रोध कभी।
होता कृतज्ञ मित्रो के प्रति, मद करे न जो श्रुत पाकर भी ॥११॥

त्रुटि पर न करे निन्दा पर की, मित्रो पर क्रोध नही करता।
जो अप्रिय मित्र जनो का भी, पीछे से हितकर ही कहता ॥१२॥

जो कलह युद्ध का वर्जक है, तत्वज्ञ कुलीन कहाता है।
इन्द्रिय-मन-गोपक लज्जालु, सुविनीत वही कहलाता है ॥१३॥

गुरु कुल मे वास सदा करता, हो योग निष्ठ उपधान तपी।
प्रियकारी वा प्रियभाषी नर, पाता शिक्षा का लाभ जपी ॥१४॥

जिस भाँति शख मे रहा दूध, है उभयरूप। शोभाधारी।
वैसे ही बहुश्रुत मुनियो मे, है धर्म कीर्ति श्रुत सुखकारी ॥१५॥

जैसे कम्बोजी अश्वो मे, गुण शील युक्त कन्थक होता।
वह गति से श्रेष्ठ कहाता है, वैसे मुनि मे बहुश्रुत होता ॥१६॥

ज्यो जातिमन्त अश्वारोही, अतिशूर अटल पौरुष धारी।
युग पार्श्ववाद्य से वह शोभित, होता बहुश्रुत यो आचारी ॥१७॥

१ बाँटकर नही खाने वाला

ज्यो साठ वर्ष का तरुण करी, हथिनी दल से शोभित होता।
अपराजित बलशाली वैसे, बहुश्रुत मुनि मे शोभा पाता ॥१८॥

ज्यो तीक्ष्ण शृग और पुष्टकन्ध का बैल यूथ अधिपति होकर।
पाता शोभा इस धरती पर, वैसे शोभे बहुश्रुत मुनिवर ॥१९॥

जैसे वह तेज दाढ वाला, पशु श्रेष्ठ सिह इस धरती पर।
अपराजित शूर तरुण होता, वैसे होते बहुश्रुत मुनिवर ॥२०॥

ज्यो शख चक्र गदाधारी, नारायण नर मे शोभित है।
अपराजित योद्धा बलशाली, वैसे बहुश्रुत मुनिवर भी है ॥२१॥

चतुरन्त चक्रवर्ती जैसे, होता है महा ऋद्धिशाली।
चौदह रत्नो का अधिकारी, त्यो होता बहुश्रुत सुखकारी ॥२२॥

ज्यो सहस्राक्ष और वज्रपाणि, सुरपति वह शक्र पुरन्दर है।
वैसे आध्यात्मिक वैभव का, अधिपति होता बहुश्रुत नर है ॥२३॥

जैसे वह तिमिरध्वसकारी, नभ मे उठता सा दिनकर है।
निज तेज राशि से जलता है, वैसे होता बहुश्रुत नर है ॥२४॥

तारा - गण से घिरे हुए, ज्यो उडुपति चन्द्र सुशोभित है।
पूनम मे पूर्ण रूपधारी, वैसे मुनिगण मे बहुश्रुत है ॥२५॥

जैसे सामाजिक लोगो का, कोठार सुरक्षित रहता है।
परिपूर्ण धान्य सम श्रुतवाणी, से भरा बहुश्रुत होता है ॥२६॥

जैसे वृक्षो मे श्रेष्ठ वृक्ष, जम्बु सुदर्शन है जग मे।
आदर विहीन सुर का आश्रय, वैसे बहुश्रुत जिन मग मे ॥२७॥

ज्यो सागर मे मिलने वाली, शीता नदियो मे श्रेष्ठ कही।
नीलवान् उद्गम जिसका, शोभा बहुश्रुत की जान वही ॥२८॥

जैसे हेमाद्रि महागिरिको, जग के भूधर[१] मे श्रेष्ठ कहा।
नाना औषधियो से प्रदीप्त, त्यो बहुश्रुत मुनियो मे दीप्त अहा ॥२६॥

ज्यो जलधि स्वयभूरमण यहाँ, परिपूर्ण नीर कहलाता है।
नाना रत्नो से पूर्ण भरा, बहुश्रुत त्यो माना जाता है ॥३०॥

जो सागर सम गम्भीर दुराश्रय, निर्भय अविजित सन्त हुए।
श्रुत रत्न पूर्ण जगती त्राता, निज कर्म नाशकर सिद्धि गए ॥३१॥

इसलिए मोक्ष के अन्वेषक, जन श्रुत का ही आश्रयण करे।
जिससे निज को और पर जन को, बन्धन विमुक्ति का लाभ लहे ॥३२॥

★

१२. हरिकेशीय

चाण्डाल वश मे हो उद्भव, ज्ञानादि श्रेष्ठ गुण के धारी।
हरिकेशीबल नामक भिक्षु, थे विजितेन्द्रिय सयमधारी ॥१॥

ईर्या भाषा तथा एषणा, और परिष्ठापन उच्चार।
निक्षेप तथा आदान समिति मे, थे सयत मन शान्त विचार ॥२॥

मन वचन काय की गुप्ति से, रक्षित विजितेन्द्रिय तपधारी।
ब्रह्मयज्ञ के यज्ञस्थान, भिक्षार्थ गए मुनिव्रतधारी ॥३॥

प्रान्त मलिन - उपकरण और, तप से परिशोषित मुनि जन को।
आते देख यज्ञमडप मे, निर्धर्म विप्र हसते उनको ॥४॥

जाति मान से मन्त विप्र, हिंसक इन्द्रिय के दास बने।
वे ब्रह्मचर्य से हीन मूढ, यह वचन कहे यो द्वेष सने ॥५॥

यह दीप्त रूप आ रहा कौन, काला विकराल स्थूलनक्का।
है अर्द्धनग्न ज्यो भूत प्रेत, चिथडा गर्दन मे धर रक्खा ॥६॥

तुम कौन अदर्शनीय नर हो, आए ले आशा कौन यहाँ।
लगते अध नगे भूत तुल्य, जाओ जाओ क्यो खडे यहाँ ॥७॥

तिन्दुक तरुवासी यक्ष वहाँ, उस मुनि पर अनुकम्पा करके।
निज रूप छिपा ब्राह्मण गण से, यो बोला वचन भाव धर के ॥८॥

नृप कौशलिक तनया भद्रा, जिसके अनिन्द्य सब अंग बने।
उस मुनि पर करते मार देख, छात्रो को लगी शान्त करने ॥२०॥

देवयोग प्रेरित नृप ने, इनकी सेवा मे दे डाला।
देखा न मुझे मन से ये तव, सुर-नर-पति पूजित व्रत वाला ॥२१॥

यह निश्चय मुनि हैं उग्रतपी, इन्द्रियजित् सयत ब्रह्मव्रती।
जो पिता कौशलिक नृप द्वारा, दी गयी न चाही मुझे कभी ॥२२॥

मत हील[1] यशस्वी महाभाग ये, अत्यन्त बली और घोरव्रती।
कर दें न तेज से भस्म तुम्हे, है पूज्य अवज्ञा पात्र नही ॥२३॥

उस विप्र वधू भद्रा के सुनकर, वचन सुभाषित हितकारी।
ऋषि सेवा हित लगे यक्ष ने, रोका कुमार को उपकारी ॥२४॥

वे घोर असुर नभ मे स्थित हो, उन सबको दड प्रदान किया।
भिन्न देह, मुह रक्त गिराते, लख फिर भद्रा ने बोध दिया ॥२५॥

नख से पर्वत को खोद रहे, दांतो से लोह चबाते हो।
जो श्रमण - अनादर करते हो, पैरो से अग्नि दबाते हो ॥२६॥

आशीविष उग्रतपी ऋषिवर, है घोर पराक्रम व्रतधारी।
पावक[2] मे गिरते दल पतग सम, भिक्षा मे होता दुखकारी ॥२७॥

यदि चाह रहे हो जीवन धन, तो नत सिर सब मिल गहो शरण।
हो रुष्ट साधु यह तपधारी, कर सकता क्षण मे लोक दहन ॥२८॥

सिर पीछे की ओर झुके, फैले भुज चेष्टा बन्द हुयी।
खुल रही आँख शोणित[3] बहते, मुँह ऊपर नयन जीभ निकली ॥२९॥

---

१ हीलना मत कर २ अग्नि ३ रक्त

छात्रो को निश्चेष्ट काष्ठवत्, देख विप्रमन हुआ विषाद।
सपत्नीक ऋषि को खुश करने, बोला क्षमा करे अपराध ॥३०॥

अज्ञ मूर्ख इन बाल जनो ने, मुनिवर ! हीलित अपमान किया।
वह क्षमा करें, होते प्रसन्न मुनि, होती न क्रोध वश कभी क्रिया ॥३१॥

है अभी न रोष मन मे मेरे, था पूर्व न आगे भी होगा।
करते हैं यक्ष यहाँ सेवा, उसने इनको मारा होगा ॥३२॥

अर्थ धर्मवित् भूतिप्रज्ञ, करते न क्रोध हैं आप कभी।
यह सोच आपके चरण शरण मे आ पहुँचे हम आज सभी ॥३३॥

हे महाभाग ! पूजे तुमको, कुछ भी न तेरा जो पूज्य नही।
लें भोजन शालि अन्न आदिक, नाना व्यजन से युक्त यही ॥३४॥

हैं अन्न बहुत मेरे घर पर, खायें वह कृपा दिखा हम पर।
हा, कह मुनि ने वह भक्त पान, ले लिया मास तप पारण पर ॥३५॥

देवो ने वहा सुगन्धित जल, और दिव्य पुष्प घन बरसाया।
दुन्दुभी बजायी थी नभ मे, और 'अहोदान' हर्षित गाया ॥३६॥

प्रत्यक्ष दीखती तप-महिमा, है नहीं जाति की यह महिमा।
चाण्डाल तनय हरिकेश साधु मे, ऋद्धि और तप की गरिमा ॥३७॥

क्यो विप्र ! अग्नि प्रज्वालित कर, बाहर जल से शोधन करते।
जो बाह्य शुद्धि की खोज करे, ना कुशल सुदृष्ट उसे कहते ॥३८॥

तृण काष्ठ अग्नि और दर्भयूप, साय प्रात जब स्पर्श करे।
कर प्राण-भूत की जग हिंसा, मतिमद पाप फिर बँध करे ॥३९॥

हे भिक्षु ! करें किस भांति यज्ञ, हो नष्ट पाप जो मार्ग लिया।
हे यक्ष पूज्य ! सयत ! बोलो, कैसा सुज्ञो ने यज्ञ किया ॥४०॥

मिथ्याभाषण चोरी त्यागे, पट्काय जीव का वध न करे।
मैथुन मद माया सग्रह का, कर ज्ञान दान्त तज जग विचरे ॥४१॥

पाचो सवर से सवृत जो, अविरत जीवन को ना चाहे।
उत्सृप्टकाय शुचि त्यक्त देह, कर्मारिविजय वर यज्ञ कहे ॥४२॥

है कौन ज्योति, क्या स्थान ज्योति का ? श्रुव कौन तथा कण्डे कैसे ?
ईन्धन है कौन शान्ति कैसी, किस होम से हवन करो कैसे ॥४३॥

है तपोज्योति शुभ स्थान जीव, है श्रुवा[1] योग कण्डा है तन।
कर्मेन्धन सयम शान्तिपाठ, करता हूँ मुनि का श्रेष्ठ यजन ॥४४॥

ह्रद और कौन है शान्ति तीर्थ, तुम कहा नहा रज हरते हो।
इच्छा मेरी जानू तुम से, हे यक्षपूज्य ! क्या कहते हो ॥४५॥

ब्रह्म शान्ति का तीर्थ, धर्म ह्रद, स्वच्छ मुदित लेश्या वाला।
जिसमे नहा दोप को छोड़ू, विमल शीत शुचि गुणवाला ॥४६॥

कुशलो ने देखा स्नान यही, ऋषियो का उत्तम स्नान महा।
जिसमे नहा महा ऋपिवर ने, विमल शुद्ध वर पद पाया ॥४७॥

१ कडछी

१३. चित्त-सम्भूतीय

हस्तिनपुर मे जाति निमित्तक, किया निदान निन्दा पाकर।
चूलनी-कुक्षि से ब्रह्मदत्त, जन्मा प्रिय सुरभव से आकर ॥१॥

सम्भूत जन्म काम्पिल्य नगर, और पुरिमताल मे चित्त हुआ।
हो सेठ महाकुल मे फिर भी, सुन धर्म प्रव्रज्या ग्रहण किया ॥२॥

काम्पिल्य नगर मे चित्त और, सभूत परस्पर मिल पाये।
अपने सुख दु ख का फल विपाक, दोनो को दोनो बतलाये ॥३॥

महाऋद्धि सयुत् चक्री था, महायशस्वी भू स्वामी।
बहुमान पुरस्सर ब्रह्मदत्त, भाई को बोला हितकामी ॥४॥

हम दोनो पहले भाई थे, अन्योन्य प्रेम के वश रहते।
अनुरक्त परस्पर मे दोनो, हित एक दूसरे का कहते ॥५॥

थे दोनो दास दशार्ण बीच, मृग कालिजर पर्वत पर थे।
मृत-गगा तट पर रहे हस, चाण्डाल बने काशी मे थे ॥६॥

सौधर्म-लोक मे देव हुए, अति ऋद्धिमान दोनो भाई।
हम सबका यह छट्ठा भव है, जिसमे छूटी है मित्राई ॥७॥

कर निदान चक्री पद का, राजन्। तुमने मन ध्यान किया।
उस भोग कर्म के फलस्वरूप, हमने वियोग फल प्राप्त किया ॥८॥

सत्य शौचमय प्रकट कर्म, मैंने पहले करलिए भले।
हूँ आज भोगता फल उसका, क्या चित्त ! तुम्हे भी वही मिले ॥९॥

शुभ कर्म सफल नर के होते, है कृत-कर्मो से मुक्ति नही।
श्रेष्ठ अर्थ और कामो से, शभ फल आतमा यह भोग रही ॥१०॥

सभूत जान अति भाग्यवान, अति ऋद्धियुक्त शेभ फलवाला।
इस चित्तजीव को भी राजन् ! जानो यो कान्ति ऋद्धि वाला ॥११॥

बहु अर्थ स्वल्प शब्दो वाली, गाथा गायी मुनि जनगण मे
अर्जन करते मुनि शील-गुणो, सुन मैं भी श्रमण बना क्षण मे ॥१२॥

उच्चोदय कर्क मध्य ब्रह्मा, मधु रम्यावास सजे सारे।
धन धान्य भरा घर भोग करो, पाचालक गुण शोभा धारे ॥१३॥

तुम नाट्य गीत और वाद्य सहित, नारी जन से परिवृत होकर।
भोगो इन भोगो को भिक्षो ! लगती मुनिता मुझको दु खकर ॥१४॥

पूर्व प्रेम से अनुरागी, अतिशय कामी उस भूधव को।
धर्माश्रित उसका हित चिन्तक, यो कहा चित्त ने नृप वर को ॥१५॥

है सारे गीत विलाप तुल्य, है विडम्बना नाटक सारे।
है आभूषण सब भार यहा, दु खदायी काम-भोग सारे ॥१६॥

बाल-मनोहर दु खदायी, कामो मे वह सुख कही नही।
जो काम-विरत उस तपोधनी, भिक्षुक को सुख प्राप्त यही ॥१७॥

अधम जाति चाण्डाल मनुज की, उसमे हम दोनो जन्म लिए।
हम वसे वहाँ सबसे निन्दित हो, चाण्डाल कुलो मे कर्म किए ॥१८॥

उस पाप युक्त चाण्डाल जाति मे, जन्म वास हमने पाया।
सब जन के घृणापात्र होकर, इस भव मे सचित फल पाया ॥१९॥

महाभाग हे भूप ! यहा अब, पुण्य फलोचित पद पाकर ।
दीक्षा के हेतु बढो आगे, नश्वर भोगो को ठुकरा कर ॥२०॥

अस्थिर इस जीवन मे भूधव ! जो अतिशय पुण्य न कर पाता ।
बिना धर्म के मरणकाल, और परभव मे है पछताता ॥२१॥

ज्यो सिंह पकड ले जाता मृग को, त्यो मृत्यु मनुज को ले जाती ।
ना माता भाई और पिता, उस क्षण मे होते है साथी ॥२२॥

पुत्र मित्र या बन्धु जाति जन, उस दु ख मे भाग नही करते ।
स्वय अकेला दु ख भोगे नर, कर्ता के फल पीछे चलते ॥२३॥

द्विपद चतुष्पद क्षेत्र भवन धन, धान्य और माया तजकर ।
परभव मे सुख दु ख पाने को, वह जाता कर्म विवश बनकर ॥२४॥

वह तुच्छ देह चिति पर रखके, पावक से उसे जलाते है ।
पत्नी पुत्र बन्धु जन सब, फिर अन्य दातृ सग जाते है ॥२५॥

सतत कर्म यह जीवन हरता, जरा कान्ति का हरण करे ।
पाँचालराज ! यह वचन श्रवणकर, मत अति कर्मो का बन्ध करें ॥२६॥

मुनिवर जैसा तुम बोल रहे, मैं भी तो वैसा जान रहा ।
ये भोग रागवर्धक होते, हम से दुर्जय, मन मान रहा ॥२७॥

नगर हस्तिनापुर मे मैंने, देखा शतखण्ड धनी राया ।
तब काम भोग से मूर्छित हो, सकल्प भोग का करवाया ॥२८॥

किया न दोष का प्रतिक्रमण, मैंने उसका यह फल पाया ।
जान धर्म को, काम भोग मे, मूर्छित मन हो ललचाया ॥२९॥

जैसे कीचड मे फँसा नाग, तट देख न वहा पहुँच पाता ।
वैसे कामो मे लीन बना, मैं भिक्षु मार्ग ना जा पाता ॥३०॥

जाता समय रात्रियाँ जाती, भोग पुरुष के नित्य नहीं।
मिल कर भोग तजे नर को, फलहीन वृक्ष खग[1] रहे नहीं ॥३१॥

राजन्! यदि भोग न तज सकते, तो आर्यकर्म भी कर डालो।
धर्मस्थित हो प्रजा हितैषी, जिससे सुर का शुभ पद पा लो ॥३२॥

ना भोग त्याग की मति तेरी, आरभ-परिग्रह मूर्छित हो।
तो व्यर्थ प्रलाप किया मैने, जाता हूँ भूप! उपेक्षित हो ॥३३॥

पाञ्चाल भूप वह ब्रह्मदत्त, मुनिवर का वचन अमानित कर।
गया अनुत्तर[2] नरक बीच, अतिशय भोगो का अनुभव कर ॥३४॥

काम भोग से विरत चित्त भी, उग्रतपस्वी व्रतधारी।
निर्दोष विरति का पालन कर, हो गए सिद्धि गति अधिकारी ॥३५॥

☆

---

१ पक्षी २ सातवी नरक भूमि

१४. इषुकारीय

हो पूर्व जन्म मे देव कई, सुर-पद से च्युत होकर आए।
प्राचीन नगर इषुकार ख्यात, सुर-पुर-सम सम्पत् को पाए॥१॥

निज शेष पुराकृत कर्मों से, अति उच्च कुलो मे जन्म लिया।
भव-भय से पा निर्वेद छोड, प्रिय आर्हत् पथ स्वीकार किया॥२॥

पुरुष रूपधर युगल पुत्र, प्रोहित और पत्नी यशेश्वरी।
विस्तीर्ण कीर्ति इषुकार भूप, देवी कमला थी प्रेम भरी॥३॥

जन्म जरा और मरण भीत, शिवपथ दोनो के मन भाये।
ससार चक्र के मोचन हित, मुनि देख, विरति वे मन लाये॥४॥

निज कर्म निरत उस ब्राह्मण के, प्रिय पुत्र युगल मन जाग गए।
जग गयी पूर्व की जन्म स्मृति, तप सयम व्रत सब ज्ञात हुए॥५॥

दिव्य मानुषी भोगो मे, उनकी भोगेच्छा रही नही।
हो मोक्ष भाव श्रद्धा सयुत, आ पास तात से बात कही॥६॥

यह दृश्य देख नश्वर जग का, अल्पायु तथा बहु विघ्न भरे।
मिलती न शान्ति मुझको घर मे, अनुमति दे मुनिता ग्रहण करें॥७॥

भूसुर ने उत्तर मे उनको, सयम-व्याघातक बात कही।
वेदो के ज्ञाता कहते हैं, सतति विहीन का लोक नही॥८॥

पढ वेद विप्र को भोजन दे, घर मे सुत को स्थापित करके।
लो भोग - भोग नारी के सग, हो आरण्यक मुनिव्रत धर के ॥९॥

आत्म - गुणेन्धन[1] मोह्-पवन, और शोक-वह्नि[2] से जलता था।
परितप्त हृदय सुत ममता से, बहु विध करके समझाता था ॥१०॥

भू सुर[3] धन भोगो से क्रमश , सुत को आमन्त्रण प्रेम करे।
देख पुरोहित को वैसे, यो पुत्र ज्ञान की बात करे ॥११॥

वेदो के पढने से त्राण, और विप्र खिलाये तमस् गिरे।
पुत्र हुए भी त्राण नही, फिर वचन आपका कौन करे ? ॥१२॥

क्षण मात्र सुखद चिरकाल दु ख, अति दु ख स्वल्प सुखकारी है।
है भोग मोक्ष के प्रतिगामी, सकट - खानि दु खकारी है ॥१३॥

अनिवृत्त कामना से प्राणी, दिन - रात तप्त मन फिरते है।
पर हेतु प्रमत्त धनाकाक्षी, नर मृत्यु जरा को पाते है ॥१४॥

यह मुझको है यह न हमे, यह कृत्य अकृत्य रहा मेरा।
यो कहते करता काल हरण, फिर क्यो प्रमाद डाले डेरा ॥१५॥

मन हर नारी और धन प्रभूत, स्वजन काम गुण विपुल रहा।
तप करते जन जिस कारण, स्वाधीन यहाँ सब तुम्हे अहा ॥१६॥

धर्म धुरा के धारण मे, धन, स्वजन काम गुण से है क्या ?।
हम गुणधारी वर श्रमण बनेगे, भिक्षाजीवी विषयो से क्या ? ॥१७॥

जैसे तिल मे तेल, क्षीर घृत, अनल अरणि से प्रकटाता।
वैसे तन मे जीव प्रकट होता, न किन्तु है टिक पाता ॥१८॥

१ रागादि गुण रूप इन्धन २ शोक रूप अग्नि ३ पुरोहित

आत्मा नित्य अमूर्त भाव वश, इन्द्रियग्राह्य नही होता ।
आत्म-दोष मूलक बन्धन है, ससार हेतु बन्धन होता ॥१९॥

हम धर्म ज्ञान के बिना मोहवश, पाप किये पहले भारी ।
अवरोध और सरक्षण पा, वह फिर न करेगे दु खकारी ॥२०॥

हो रहा लोक यह अति पीडित, दु ख से यह चारो ओर घिरा ।
आती है काली रात यहाँ, घर मे सुख मिलता नही जरा ॥२१॥

किससे पीडित हो रहा लोक, और घिरा हुआ है यह किससे ? ।
है कौन अमोघा कहलाती, हूँ पुत्र ! बडा चिन्तित इससे ॥२२॥

यह लोक मृत्यु से पीडित है, और जरा रोग से घिरा हुआ ।
है रात्रि अमोघा कहलाती, हे तात ! जान ले शास्त्र कहा ॥२३॥

जो जो जाती है बीत निशा, वे नही लौटकर है आती ।
करते अधर्म जो जन जग मे, उनकी ये रात विफल जाती ॥२४॥

जो जो जाती है निशा बीत, वे नही लौटकर है आती ।
करते जो धर्माराधन है, उनकी वे रात सफल जाती ॥२५॥

पुत्रो ! हम सब एक साथ रह, दर्शनव्रत धारण कर ले ।
फिर सयम मे आगे बढ के, घर घर भिक्षा से तन धर लें ॥२६॥

है मृत्यु सग मैत्री जिसकी, अथवा जो उससे भाग सके ।
जो जाने मरण नही होगा, वह कल की इच्छा धार सके ॥२७॥

हम धर्म आज ही ग्रहण करे, पा जिसको फिर ना जन्म धरे ।
अप्राप्त नही कुछ भी हमको श्रद्धा समर्थ ना राग करें ॥२८॥

हो पुत्रहीन का वास नही, वासिष्ठि ! काल यह भिक्षा का ।
पाता समाधि तरु शाखा से, जो शाख-विहीन ठडा तरु का ॥२९॥

पखहीन खग ज्यो जग मे, सेना विन निर्बल नृप रण मे।
धनहीन वणिक् ज्यो नौका पर, त्यो व्यक्त-पुत्र मै हूँ जन मे ॥३०॥

अतिशय सुन्दर शब्दादि विषय, पुञ्जीकृत उत्तम रस वाले।
भोगो को मन भर अनुभव कर, हम चले मुक्तिपथ मत वाले ॥३१॥

भोगे रस तजती है आयु, जीवन हित हम ना भोग तजे।
लाभ-हानि, सुख-दु ख सब सम, यह देख श्रेष्ठ मुनि धर्म भजें ॥३२॥

आवे न याद निज सोदर की, बन जीर्ण हँसवत् प्रतिगामी।
इसलिए भोग लें साथ भोग, भिक्षुक जीवन है दु खकामी ॥३३॥

छोड केंचुली यथा सर्प, निस्नेह भाव से गमन करे।
जाते सुत वैसे भोग त्याग, हम क्यो न गमन का भाव धरें ॥३४॥

जैसे रोहितमत्स्य जीर्ण, है जाल काट बाहर जाता।
वैसे धीर उदार तपीजन, भोग छोड मुनिव्रत पाता ॥३५॥

जैसे क्रौच हँस गण नभ मे, काट जाल को उड जाये।
जाते पुत्र और मेरे पति, मैं क्यो न चलू मन हर्षाये ॥३६॥

सुत-दारा सग भूसुर ने, तज भोग महाव्रत धार लिया।
सब वैभव उसका मगा लिया, तब रानी ने उपदेश दिया ॥३७॥

राजन् ! नही प्रशसा होती, जो खाते है किया वमन।
कैसे लेना चाह रहे हो, ब्राह्मण ने जो छोडा धन ॥३८॥

जग सारा यदि हो तेरा, सब धन भी तेरा हो जाये।
वह सब तेरे हित अपर्याप्त, उनसे न त्राण तव हो पाये ॥३९॥

जब छोड मनोरम काम भोग, राजन् ! तू मर कर जायेगा।
रक्षक तब होगा एक धर्म, रक्षक न अन्य तू पायेगा ॥४०॥

पिंजर मे खगवत् मै रहती, कर बन्धछेद मै विचरूँगी।
निष्काचन मनसरल भोग तज, दोष-रहित वन जाऊँगी ॥४१॥

दावानल से जलकर मरते, वन मे जीवो को देख यथा।
जिन पर सवार है राग द्वेप, हर्षित होते वे जीव वृथा ॥४२॥

ऐसे ही हम सब मूढ बने, आसक्त विषय सुख भोगो मे।
राग-द्वेष मे जलता जग, पर बोध जगे ना लोगो मे ॥४३॥

भोग भोग कर त्याग करे, ज्ञानी लघुकर्मा बनते है।
खग कुल सम इच्छाचारी[1] हो, हर्षित मन हो वे चलते है ॥४४॥

हे आर्य! हाथ आये मेरे, हैं बधे काम ये उछल रहे।
हम काम-गुणो मे बँधे रहे, अब होगे ज्यो सुत विचर रहे ॥४५॥

देख कुलल के पास मास, झपटे खग नही निरामिष पर।
आमिषवत् पूर्ण भोग तज कर, विहरूँगी मैं अविषय बनकर ॥४६॥

लो जान गीध की उपमा से, है काम भोग भव-वर्धनकर।
शकित हो इनसे चले यथा, चलता खगपति[2] से अहि डरकर ॥४७॥

जैसे गज बन्धन तोड विपिन, वसने को हर्षित हो जाता।
हमने यह तथ्य सुना राजन्! कर राग त्याग शिव पद पाता ॥४८॥

राजा और रानी विपुल राज्य, तज काम भोग अतिशय दुस्तर।
निर्विषय निरामिप स्नेहहीन, हो गए जगत् बन्धन से पर ॥४९॥

वे सम्यक् धर्म स्वरूप जान, उत्तम भोगो को तज करके।
जिन कथित घोर तप धार लिए, पौरुप दृढ मन मे धर करके ॥५०॥

१ मनोनुकूल विहार करने वाला २ गरुड

यो देवदत्त आदिक क्रम से, सब धर्म-परायण बुद्ध हुए।
हो जन्म मरण भय से विह्वल, दुखान्त-मार्ग[1] को खोज लिए ॥५१॥

अर्हत् शासन मे मोह त्याग, वे पूर्व भावना भावित जन।
कर गए अन्त सब दु खो का, कर अल्पकाल मे मोक्ष गमन ॥५२॥

राजा रानी के सग चला, पत्नी सग विप्र पुरोहित भी।
युग-पुत्र लगे पहले शिव पथ, हो गए दु ख से मुक्त सभी ॥५३॥

★

१ दु ख का अत करने वाला मार्ग

१५ सभिक्षुक

धर्म ज्ञात कर मुनिव्रत लूँगा, ऋजु-क्रिय मुनि सह छिन्न निदान।
जग परिचय तज काम रहित, अज्ञातगवेषी को मुनि जान ॥१॥

राग विरत शुभ रीति चले, शास्त्रज्ञ पाप का हरता ध्यान।
दोष हटाकर अतिदर्शी, जो कही न मूर्छित वह मुनि जान ॥२॥

आक्रोश वधादिक जान हृदय, मुनि आत्मवशी ले कर्म निदान।
तज हर्ष शोक सब सहन करे, हो धीर शान्त मन वह मुनि जान ॥३॥

तुच्छ शयन आसन पाकर, शीतोष्ण दश का कष्ट महान्।
जो व्यग्र और ना हृष्ट बने, अति कष्ट सहे लो वह मुनिजान ॥४॥

महिमा पूजा की चाह नही, जिसको न ख्याति वन्दन का ध्यान।
वह व्रती तपी सयत ज्ञानी, आत्मान्वेषी है श्रमण महान् ॥५॥

जिससे छूटे सयम जीवन, जो पूर्ण मोह का कहा निदान।
नर नारी का सग तपी तज, कौतुक त्यागी है श्रमण महान् ॥६॥

जो स्वर भौम शुभाशुभ अम्बर, दण्ड स्वप्न वास्तुक का ज्ञान।
अग विकार जान नभचर स्वर, से न कार्य ले श्रमण महान् ॥७॥

मन्त्र-मूल[1] बहु वैद्यक चिन्ता, धूमनेत्र[2] कर वन्ति स्नान।
रोग चिकित्सा आर्त स्मरण तज, चले त्याग पर श्रमण महान् ॥८॥

---

१ मन्त्र, मूल-जडी-बूटी आदि

२ धूम्रपान की नली

क्षत्रिय माहण राजपुत्र गण, उग्र विविध शिल्पी लो जान।
उनकी महिमा ना ख्याति करे, वह त्यागी जानो श्रमण महान् ॥९॥

दीक्षा के पहले या पीछे, देखे या परिचित जो मतिमान।
उनका लौकिक फल पाने हित, जो करे न सस्तव वह मुनिजान ॥१०॥

शयनासन भोजन पान विविध, खादिम-स्वादिम ना करे प्रदान।
दाता मुनि को प्रतिषेध करे, उन पर कुपित न हो वह मुनिजान ॥११॥

जो अशन पान और खाद्य स्वाद्य, यत्किंचित गृही से कर आदान।
उनको त्रियोग आशीष न दे, सवृत योगी लो वह मुनिजान ॥१२॥

आयामक[1] जव ओदन काजी, यव-उदक[2] शीत भोजन लो जान।
नीरस भोजन निन्दा न करे, विचरे लघु कुल मे श्रमण महान ॥१३॥

देव मनुज और तिर्यंचोके, विबिध शब्द सुनते मतिमान्।
भीम भयकर शब्दो को सुन, डरे नही वह श्रमण महान् ॥१४॥

वाद-बहुल जग जान साधु सह, सयमी शास्त्र का रखता ज्ञान।
प्राज्ञ सहिष्णु वा समदर्शी, उपशान्त शान्त वह श्रमण महान् ॥१५॥

है मुक्त सग गृह मित्र रहित, शिल्पाजीवी वशितेन्द्रिय जान।
मदकषायी लघ्वाशी[3], गृह त्याग चले वह श्रमण महान् ॥१६॥

---

१ ओसापन   २ जो का पानी   ३ अल्प-आहारी

१६. ब्रह्मचर्य-समाधि-स्थान

आयुष्मन् ! मैने श्रवण किया, जो वीर प्रभु ने फरमाया।
ब्रह्म समाधि के दश स्थानक, स्थविरो ने ऐसे बतलाया ॥
कर श्रवण मनन उन स्थानो का, सयत सवर सद्गुप्ति सुधर।
हो गुप्तेन्द्रिय और ब्रह्म गुप्त, विचरे शिवपथ आलस तजकर ॥१॥

गणधर ने क्या कहा यहा, उस ब्रह्म भाव के शोधन को।
है कौन स्थान वे दश जग मे, जो अन्त करे भव बन्धन को ॥
सुनकर या धारण कर निश्चय, अर्थो का सवरण करे।
अभ्यास-योग से चंचल मन, गोपन कर आत्म-समाधि वरे ॥
इन्द्रिय - गोपन कर विषयो से, निज आत्मभाव मे गुप्त रहे।
जो ब्रह्मगुप्तियो से रक्षित, व्रत को रक्खे निज ताप सहे ॥
इस तरह सर्वथा इस जग मे, मुनि स्वस्थ भाव को धारण कर।
हर ले काया का सकल क्लेश, हो अप्रमत्त मन विचरण कर ॥२॥

उस ब्रह्मचर्य समाधि के, पद दश स्थविर प्रभु ने कहे।
सुनकर जिन्हे, कर अर्थ निश्चय, भिक्षु सयम मे रहे ॥
साधक करे अभ्यास वारम्वार, ब्रह्म समाधि का।
गोपन करे अतियत्न से, तन मन वचन की साधिका ॥
निज इन्द्रियो का प्रिय विषय से, नित्य ही रक्षण करे।
कर दश-सुरक्षा[1] से सुरक्षित, ब्रह्मव्रत पालन करे ॥

---

१ ब्रह्मचर्य समाधि के दस स्थान

इस भाँति मन मे हो मुदित, मुनि स्वस्थता धारण करे।
विहरे जगत मे शान्ति से, वह व्याधि का वारण करे॥

करता यहाँ जो नित्य ही, एकान्त शय्यास्थल वसन।
निर्ग्रन्थ वह जो बैठता, निर्दोष आसन कर चयन॥
निर्ग्रन्थ पशु नारी नपु सक, से सदा हटकर रहे।
इनसे घिरे आसन शयन का, वह नही सेवन करे॥

गुरुदेव! यह क्यो शिष्य ने, पूछा जभी आचार्य से।
आचार्य ने उत्तर दिया निज, शिष्य को अतिचाव से॥
नारी, नपु सक और पशु से, जो घिरा गृहवास है।
करते न सेवन मुनि उन्हे, रागादि का आवास है॥

फिर ब्रह्मव्रत के विषय मे, उस ब्रह्मचारी के हृदय।
काक्षा विसशय और शका, स्वत लेती है उदय॥
अथवा नही तो ब्रह्मव्रत का, पूर्ण होता नाश है।
यदि बच सका इससे कही, तो रोग या उन्माद है॥

फिर दीर्घ-कालिक रोग या, आतक होता है उसे।
वह भ्रष्ट होता है जगत मे, केवली के धर्म से॥
अत एव नारी, पशु, नपु सक, से शयन जो हो घिरे।
निर्ग्रन्थ वैसे वास का, निश्चय नही सेवन करे॥३॥

नारी जनो की जो कथा, करता नही निर्ग्रन्थ वह।
यह क्यो कहा आचार्य ने, कहते सकल सद्ग्रन्थ यह॥
जो गोष्ठियो मे नारियो की, रसमयी करता कथा।
उस ब्रह्मचारी सत को, ऐसी कथा देती व्यथा॥

फिर ब्रह्मव्रत के विषय मे, उस ब्रह्मचारी के हृदय।
काक्षा विसशय और शका, स्वत लेती है उदय॥
अथवा नही तो ब्रह्मव्रत का, पूर्ण होता नाश है।
यदि बच गया उससे कही, तो रोग फिर उन्माद है॥

या दीर्घकालिक रोग वा, आतक होता है उसे।
वह भ्रष्ट होता है जगत मे, केवली के धर्म से ॥
अतएव नारी की कथा, करना न मुनि का कर्म है।
निज पूर्वजो की नीति पर, चलना यही शुभ धर्म है ॥४॥

जो एक आसन पीठ पर, बैठे न नारी सग मे।
निर्ग्रन्थ वह, यह क्यो, कहे आचार्य उक्त प्रसग मे ॥
जो नारियो के सग आसन, एक पर है बैठता।
उस ब्रह्मचारी सत के, मन मे दुराशय पैठता ॥

फिर ब्रह्मव्रत के विषय मे, उस ब्रह्मचारी के हृदय।
कांक्षा वि सशय और शंका, स्वत लेती है उदय ॥
अथवा नही तो ब्रह्मव्रत का, पूर्ण होता नाश है।
यदि बच गया उससे कही, तो रोग या उन्माद है ॥

या दीर्घकालिक रोग वा, आतक होता है उसे।
वह भ्रष्ट होता है जगत मे, केवली के धर्म से ॥
अतएव आसन पीठ कुछ भी, बैठने के वास्ते।
बैठे न नारी सग मुनि, निज ब्रह्म रक्षण वास्ते ॥५॥

जो नारियो के मृदु मनोहर, अग और उपांग को।
अतिशय मनोरम इन्द्रियो के, काम-वर्धक ढग को ॥
आखे गडा देखे नही, सोचे न उस पर कुछ कभी।
है परम उत्तम साधु वह, नमनीय जग कहता सभी ॥

यह क्यो कहा आचार्य ने, जो नारियो के अग को।
अतिशय मनोरम और मनहर, काम-वर्धक ढग को ॥
आखें गडा उस रूप को, जो देखने वाले श्रमण।
अथवा सतत प्रिय प्रेयसी का, जो करे चिन्तन मनन ॥

फिर ब्रह्मव्रत के विषय मे, उस ब्रह्मचारी के हृदय।
काक्षा विसशय और शका, स्वत लेती है उदय ॥

अथवा नही तो ब्रह्मव्रत का, पूर्ण होता नाश है।
यदि बच गया उससे कही, तो रोग वा उन्माद है॥

या दीर्घकालिक रोग वा, आतंक होता है उसे।
वह भ्रष्ट होता है जगत् मे, केवली के धर्म से॥
अतएव नारी के मनोरम, मृदुल-मनहर - अग को।
आँखे गडा देखे न सोचे, मुनि सतत उस रग को॥६॥

दीवार मिट्टी की जहाँ, दे ध्यान अन्तर भाग से।
परदे तथा दीवार पक्की के, पहुँच कर पास से॥
सुनता नही जो नारियो के, हास्य रोदन गीत है।
कूजन तथा प्रविलाप क्रन्दन, गर्जन तजे वह सत है॥

यह क्यो कहा आचार्य ने, उस मृत्तिका दीवार के।
परदे तथा दीवार पक्की, भीतरी सभाग के॥
जो नारियो के हास-रोदन, गीत क्रन्दन को अहा।
गर्जन तथा कूजन रवो को, सन्त जन सुनते रहा॥

फिर ब्रह्मव्रत के विषय मे, उस ब्रह्मचारी के हृदय।
काक्षा विसशय और शका स्वत लेती है उदय॥
अथवा नही तो ब्रह्मव्रत का, पूर्ण होता नाश है।
यदि बच गया उससे कही, तो रोग या उन्माद है॥

या दीर्घकालिक रोग वा, आतक होता है उसे।
वह भ्रष्ट होता है जगत् मे, केवली के धर्म से॥
अतएव मिट्टी भीत या, परदा सुदृढ दीवार के।
ब्रह्मचारी ना सुने वे, शब्द चित्त विकार के॥७॥

गृहवास मे पहले किए, जो भोग और विलास का।
करता नही जो सस्मरण, मन मानकर उपहास का॥
वह साधु है, यह क्यो ? कहा, आचार्य ने प्रिय शिष्य को।
निश्चय श्रमण वह जो न करता, याद मैथुन कर्म को॥

रति और क्रीडा का स्मरण, उस ब्रह्मचारी के हृदय।
काक्षा विसशय और शका, का कराता है उदय॥
अथवा नही तो ब्रह्मव्रत का, पूर्ण होता नाश है।
यदि बच गया उससे कही तो, रोग या उन्माद है॥

या दीर्घकालिक रोग वा, आतक होता है उसे।
वह भ्रष्ट होता है जगत् मे, केवली के धर्म से॥
अतएव अपने पूर्व-गृह-कृत, काम क्रीडा का स्मरण।
करके न ब्रह्म समाधि से, च्युत हो कभी भी सतजन॥८॥

जो पुष्ट भोजन पान का, सेवन यहाँ करता नही।
निर्ग्रन्थ वह, यह क्यो कहा, आचार्य बोले यह सही॥
जो पुष्ट भोलन पान का, करता सदा सेवन यहाँ।
मन ब्रह्म भावो से विरत उस, व्यक्ति का बनता यहाँ॥

नित पुष्ट भोजन पान से, उस ब्रह्मचारी के हृदय।
काक्षा विसशय और शका, स्वत लेती है उदय॥
अथवा नही तो ब्रह्मव्रत का, पूर्ण होता नाश है।
यदि बच गया उससे कही, तो रोग या उन्माद है॥

या दीर्घकालिक रोग वा, आतक होता है उसे।
वह भ्रष्ट होता है जगत् मे, केवली के धर्म से॥
अतएव मुनि को चाहिए, वह पुष्टिकर आहार का।
सेवन करे ना भूल से, विपरीत मुनि व्यवहार का॥९॥

परिमाण से वढ जो न खाता और पीता है यहाँ।
निर्ग्रन्थ वह, यह क्यो ? तुरन्त, गुरुदेव ने उत्तर कहा॥
परिमाण से वढ पान-भोजन, जो यहाँ सेवन करे।
मन ब्रह्म भावो से विरत हो, सत्य पथ विस्मृत करे॥

फिर अधिक भोजन पान से, उम ब्रह्मचारी के हृदय।
काक्षा विसशय और शका, स्वत लेती है उदय॥

अथवा नहीं तो ब्रह्मव्रत का, पूर्ण होता नाश है।
यदि बच गया उससे कहीं, तो रोग फिर उन्माद है॥

या दीर्घकालिक रोग वा, आतक होता है उसे।
वह भ्रष्ट होता है जगत् मे, केवली के धर्म से॥
अतएव मुनि को चाहिये, अतिपान वा आहार का।
हर्गिज नही सेवन करे, विपरीत मुनि व्यवहार का॥१०॥

जो सयमी भूषा न करता, है यहाँ निर्ग्रन्थ वह।
यह क्यो कहा आचार्य ने, है सूत्र का निर्देश यह॥
पड गयी आदत जिसे, तन के सजाने की जहाँ।
वैसे सुसज्जित देह पर, आसक्त महिला हो यहाँ॥

फिर नारियो की चाह पर, उस ब्रह्मचारी के हृदय।
काक्षा विसशय और शका, स्वत लेती है उदय॥
अथवा नही तो ब्रह्मव्रत का, पूर्ण होता नाश है।
यदि बच गया उससे कहीं, तो रोग या उन्माद है॥

या दीर्घकालिक रोग या, आतक होता है उसे।
वह भ्रष्ट होता है जगत् मे, केवली के धर्म से॥
अतएव मुनि को चाहिए वह, तन सुसज्जित ना करे।
निर्दोष सादा वेष धर, मुनि धर्म शोभित करे॥११।

जो इन्द्रियो के विषय मे, आसक्त होते है नही।
निर्ग्रन्थ वह, यह क्यो, पुन आचार्य बतलाते सही॥
जो शब्द गन्ध स्पर्श रस, और रूप मे आसक्त है।
वह ब्रह्मव्रत से दूर हो, बनता विषय का भक्त है॥

फिर विवश-इन्द्रिय हो रहे, उस ब्रह्मचारी के हृदय।
काक्षा विसशय और शका, स्वत लेती है उदय॥
अथवा नही तो ब्रह्मव्रत का, पूर्ण होता नाश है।
यदि वच गया उससे कही, तो रोग या उन्माद है॥

या दीर्घकालिक रोग वा, आतक होता है उसे।
वह भ्रष्ट होता है जगत् मे, केवली के धर्म से ॥
अतएव इन्द्रिय विवश जग, होवे न भूले सतजन।
निज ब्रह्मचर्य समाधि का, पाले नियम धर ध्यान मन ॥१२॥

श्लोक

जो भवन यहाँ एकान्त शून्य, प्रमदा का जहाँ निवास नहीं।
है ब्रह्मचर्य रक्षा हित मुनि, करते उस घर मे वास सही ॥१॥

मन को प्रसन्न करने वाली, जो काम - राग वर्धन वाली।
मुनि ब्रह्मभाव रमने वाला, तज दे नारी विकथा काली ॥२॥

नारी की राग कथा परिचय, दोनो ही ब्रह्म विघातक है।
मुनि नित्य करे इसका वर्जन, जो ब्रह्मचर्य का पालक है ॥३॥

आकार अग प्रत्यग तथा, वाणी की छटा और चितवन।
ब्रह्मव्रती नारी जन के, अगो पर दृष्टि करे वर्जन ॥४॥

नारी के कूजन हास्य गीत, रोदन गर्जन और आक्रन्दन।
है सुने नही इन शब्दो को, जो ब्रह्मचर्य व्रतलीन श्रमण ॥५॥

नारी के सग हास दर्प, रति-क्रीडा सहमा त्रास सभी।
जो ब्रह्मचर्य मे लीन श्रमण, लायें न उन्हे मन ध्यान कभी ॥६॥

है अतिपौष्टिक जो भक्तपान, भोगेच्छा शीघ्र वढाते है।
ब्रह्मभाव मे लीन सत तज, नित्य इन्हे सुख पाते हैं ॥७॥

दोप रहित समयानुकूल, यात्रार्थ सदा भिक्षा लेकर।
हो ब्रह्मचर्य सलीन सदा, खाये न कभी सीमा तजकर ॥८॥

ब्रह्मचर्य व्रत - लीन भिक्षु, शोभा का वर्जन नित्य करे।
अपने शरीर का परिमण्डन, शृंगार हेतु ना चित्त धरे ॥९॥

शब्द रूप रस गन्ध स्पर्श, ये पाँचो काम बढाते है।
इन काम गुणो को तजे नित्य, ये राग वृद्धि करवाते है ॥१०॥

हो नारी जन से घिरा निलय, और नारी कथा मनोहर हो।
अतिपरिचय हो नारी जन का, मनहर इन्द्रिय का दर्शन हो ॥११॥

कूजन रोदन और गीत हास, परिभुक्त भोग का अनुशीलन।
अति पुष्ट सरस अशनादिक का, अति मात्रा मे करना भोजन ॥१२॥

गात्र सजाना इष्ट भोग, कामेच्छा वर्जन दुर्जय है।
आत्म-गवेषी जनहित ये, विष तालपुटवत् क्षयकर है ॥१३॥

दुर्जय काम भोग का वर्जन, नित्य व्रती को करना है।
आशका के सभी स्थान, ध्यानी को बर्जन करना है ॥१४॥

धर्म बाग मे रमण करे मुनि, धर्मसारथी धैर्य धनी।
ब्रह्म समाहित धर्मारामी, विजितेन्द्रिय जो धर्म धनी ॥१५॥

देव असुर गधर्व यक्ष, राक्षस किन्नर सब नमन करे।
ब्रह्मव्रती साधक जो जग मे, दुष्कर व्रत को चित्त धरे ॥१६॥

जिन उपदिष्ट ब्रह्मव्रत शाश्वत, निश्चित और नियत है धर्म।
इससे सिद्ध हुए होते है, होगे और पकड यह मर्म ॥१७॥

*

१७. पाप श्रमणीय

जो विनय युक्त, सुन धर्म, बना, निर्ग्रन्थ बोधिदुर्लभ पाया।
व्रत धारण करके फिर पीछे, स्वच्छन्द श्रमण मन है भाया ॥१॥

स्थिर मिला उपाश्रय रहने को, मिलता प्रिय भोजन वस्त्र हमे।
मैं जान रहा जो है भन्ते ! फिर श्रुत से क्या है लाभ हमे ॥२॥

दीक्षित होकर जो वार-बार, अतिशय निद्रा अपनाता है।
खा पीकर सुख से सो जाता, वह पाप श्रमण कहलाता है ॥३॥

उपाध्याय आचार्यदेव, सिखलाया जिनने ज्ञान विनय।
वह पाप श्रमण है बोध विकल, जो निन्दा वा करता अविनय ॥४॥

उपाध्याय आचार्य देवकी, जो सेवा भक्ति न कर पाता।
सेवा मे सम्यक् श्रम न करे, वह पाप श्रमण है कहलाता ॥५॥

जो वीज हरित लघु जीवो के, प्राणो का मर्दन करता है।
सयमी नाम सयम - विहीन, वह पाप श्रमण कहलाता है ॥६॥

जो कम्वल चरण पोछने का, सस्तारक पाट पीठ आसन।
आरोहण करता विन पूजे, कहलाता है वह पाप श्रमण ॥७॥

करके प्रमाद जो वार-वार, दव-दव कर भू पर चलता है।
पर प्राणी लाघ चले क्रोधी, वह पाप श्रमण कहलाता है ॥८॥

प्रतिलेखन करे प्रमाद युक्त, पद-कम्वल रखता जहाँ-तहाँ।
और ध्यान विना परिलेहन करता, पाप श्रमण वह कहा यहाँ ॥९॥

जो कुछ सुनकर मन शिथिल किए, करता प्रमाद से प्रति-लेखन।
अपमान करे नित गुरुजन का, कहलाता है वह पाप श्रमण ॥१०॥

मायावी वाचाल स्तब्ध, लोभी निग्रह की वृत्ति नहीं।
जो असविभागी प्रीतिहीन, है पाप श्रमण वह दमी नही ॥११॥

जो पाप कर्म मे बुद्धि गवा, उपशान्त कलह भडकाता है।
जो लीन कलह मे आग्रह युक्त, वह पाप श्रमण कहलाता है ॥१२॥

अस्थिर आसन चेष्टा वाला, जो जहाँ - तहाँ बैठक करता।
रहता आसन मे अनवधान, मुनि पाप श्रमण वह कहलाता ॥१३॥

जो धूल लगे पद सो जाता, शय्या प्रतिलेखन ना करता।
उपयोग शून्य आसन धारी, है पाप श्रमण वह कहलाता ॥१४॥

जो दूध - दही विकृति - भोजन, करता है बारम्बार यहाँ।
रहता है तप से दूर सदा, वह पाप श्रमण प्रख्यात यहाँ ॥१५॥

सूर्य अस्त तक जो भिक्षुक, मन माने भोजन खाता है।
प्रेरित हो प्रत्युपदेश करे, वह पाप श्रमण कहलाता है ॥१६॥

गुरु चरणो की सेवा तज, पापड धर्म सेवन करता।
दुश्शील भिक्षु गण वदलू को, श्रुत पाप श्रमण है बतलाता ॥१७॥

जो अपने घर को छोड साधु, पर घर मे व्यापृत होता है।
करता निमित्त बल का प्रयोग, वह पाप श्रमण कहलाता है ॥१८॥

सामूहिक भिक्षा त्याग यहाँ, निज जाति पिण्ड को खाता है।
बैठे गृहस्थ के आसन पर, वह पाप श्रमण कहलाता है ॥१९॥

ऐसे पाँच कुशील असवृत, मुनि स्वरूप धर पथ न चले।
इस जग मे विपवत् वह गर्हित, है उभयलोक अपकार करे ॥२०॥

वर्जन करता इन दोपो को, वह सुव्रत साधु प्रवर होता।
अमृत सम पूजित इस जग मे, इह परभव आराधित वनता ॥२१॥

१८. सयतीय

कम्पिल्य नगर का भूपति था, सेना वाहन धन जन वाला।
सजय नामा वह पुर बाहर, मृगया हित निकला मतवाला ॥१॥

घोडे हाथी और रथारूढ, पैदल कितने चलने वाले।
थे बडे बडे सैनिक नृप के, चहुँ ओर घिरे प्रभुता वाले ॥२॥

मृग गण को सैनिक हाँक रहे, काम्पिल्य नगर-केसर वन मे।
उन डरे श्रान्त जीवो को नृप, रस लम्पट मार रहा क्षण मे ॥३॥

फिर केसर नामा उपवन मे, अनगार तपस्वी ज्ञानधनी।
स्वाध्याय ध्यान साधना युक्त, और धर्म ध्यान मे लीन गुणी ॥४॥

थे कर्म हेतु के उच्छेदक, मुनि लता कु ज मे ध्यान निरत।
उनके शरणागत मृग गण को, राजा ने किया वाण आहत ॥५॥

वह अश्वारोही भूप शीघ्र, आकर उस मृग के पास गया।
और मरा हुआ मृग को देखा, फिर खडे श्रमण पर ध्यान गया ॥६॥

मुनि देख वहाँ नृप भीत हुआ, सोचा मैं कितना भाग्यहीन।
रस-लोलुप घातकता वश हो, मुनि को पीडा दी मति विहीन ॥७॥

तुरग छोड कर शीघ्र भूप, मुनि चरण लगा करने वन्दन।
विनय सहित वोला मुनि से, अपराध क्षमा कर दो भगवन ॥८॥

थे ध्यानलीन वे परम तपी, अनगार मौनव्रत के धारी।
राजा को उत्तर दिया नही, भय विकल हुआ राजा भारी ॥९॥

मैं हूँ सजय मुनि मौन त्याग, मुझसे कुछ भी तो बात करे।
हो कुपित श्रमण निज तेजो से, क्रोड़ो मानव का दहन करे ॥१०॥

पार्थिव ![1] करता हूँ अभय तुम्हे, अभयप्रदाता बन जाओ।
क्षणभगुर ससार बीच क्यो, हिंसा मे मन-रस लाओ ॥११॥

जब सभी छोडकर के निश्चय, परवश हो तुमको जाना है।
फिर क्यो नश्वर इस जीव लोक मे, राज्य भोग मन लाना है ॥१२॥

जीवन और यह रूप तेरा, है चपला सम होता चचल।
राजन् ! जिस पर तू मोहित हो, पर भव हित सोचे ना क्षण पल ॥१३॥

नारी सुत वा बन्धु सखा, जीवित जन के साथी होते।
मर जाने वालो के पीछे, वे कभी न सगी हो जाते ॥१४॥

परम दु खी हो मृतक पिता को, घर बाहर सुत ले जाते।
ऐसे ही पिता बन्धु सुत को, राजन् ! तप क्यो ना अपनाते ॥१५॥

मृत जन के द्वारा अर्जित धन, और रक्षित रूपवती नारी।
उपभोग अन्य करते उनसे, हो दृष्ट तुष्ट भूषणधारी ॥१६॥

उसने भी जैसे कर्म किए, सुखकारी अथवा दु खकारी।
वस उसी कर्म को सग लिए, पर भव जाते वे नरनारी ॥१७॥

उस मुनिवर के सुन धर्म - वचन, नृप सजय के मन बोध हुआ।
जगा तीव्र सवेगभाव, विपयो से मन वैराग्य हुआ ॥१८॥

[1] राजन् !

थे ध्यानलीन वे परम तपी, अनगार मौनव्रत के धारी।
राजा को उत्तर दिया नही, भय विकल हुआ राजा भारी ॥९॥

मैं हूँ सजय मुनि मौन त्याग, मुझसे कुछ भी तो बात करें।
हो कुपित श्रमण निज तेजो से, क्रोड़ो मानव का दहन करे ॥१०॥

पार्थिव ![1] करता हूँ अभय तुम्हे, अभयप्रदाता बन जाओ।
क्षणभगुर ससार बीच क्यो, हिंसा मे मन-रस लाओ ॥११॥

जब सभी छोडकर के निश्चय, परवश हो तुमको जाना है।
फिर क्यो नश्वर इस जीव लोक मे, राज्य भोग मन लाना है ॥१२॥

जीवन और यह रूप तेरा, है चपला सम होता चचल।
राजन् ! जिस पर तू मोहित हो, पर भव हित सोचे ना क्षण पल ॥१३॥

नारी सुत वा बन्धु सखा, जीवित जन के साथी होते।
मर जाने वालो के पीछे, वे कभी न सगी हो जाते ॥१४॥

परम दु:खी हो मृतक पिता को, घर बाहर सुत ले जाते।
ऐसे ही पिता बन्धु सुत को, राजन् ! तप क्यो ना अपनाते ॥१५॥

मृत जन के द्वारा अर्जित धन, और रक्षित रूपवती नारी।
उपभोग अन्य करते उनसे, हो दृष्ट तुष्ट भूषणधारी ॥१६॥

उसने भी जैसे कर्म किए, सुखकारी अथवा दु:खकारी।
बस उसी कर्म को सग लिए, पर भव जाते वे नरनारी ॥१७॥

उस मुनिवर के सुन धर्म - वचन, नृप सजय के मन बोध हुआ।
जगा तीव्र सवेगभाव, विषयो से मन वैराग्य हुआ ॥१८॥

[1] राजन् !

हैं धर्म क्षेत्र के चार वाद, अक्रिया विनय अज्ञान क्रिया ।
है क्रियावाद इन चारों मे, ज्ञानी ने जिन को मान्य किया ॥२३॥

इन वादो का कथन किया, तत्वज्ञ ज्ञातृसुत निर्वृत ने ।
ज्ञान चरण सम्पन्न सत्यवर, सत्य पराक्रमवाले ने ॥२४॥

जो पाप कर्म करने वाले, वे घोर नरक मे जाते है ।
निर्दोष धर्म पथ पर चलकर, कई दिव्य धाम को पाते हैं ॥२५॥

एकान्तदृष्टि यह झूठ तथा, माया से पूर्ण निरर्थक है ।
इन पर सयम रख चलता हूँ, रहता हूँ जीवन सार्थक है ॥२६॥

उन अनार्य मिथ्यात्वदृष्टि, सबको मैंने है जान लिया ।
परभव की सत्ता मे हमने, सम्यक् आत्मा है मान लिया ॥२७॥

था महाप्राण[1] मे द्युतिधर मैं, सुरवर्षशतोपम तनुवाला[2] ।
जो पल्य और सागर आयु, देवी हायन शत स्थिति वाला ॥२८॥

---

१ देवविमान

२ देवभव सम्बन्धी पूर्ण आयु

ब्रह्मलोक से च्युत होकर, मैं मानुष भव मे आया हूँ।
अपनी पर की है आयु यथा, बस उसे ज्ञात कर पाया हूँ ॥२९॥

नाना मत के भाव और रुचि, मुनि को वर्जन करना है।
हिंसादि अनर्थक जान दोप, सत्ज्ञान मार्ग पर चलना है ॥३०॥

हो दूर प्रश्न वा गृह कार्यों से, दिन रात सत्य का ध्यान करे।
आश्चर्यजनक तत्परता है, यह समझ ज्ञान तप मे विचरे ॥३१॥

जो मुझे पूछते अवसर पर, सम्यक् निर्मल मन से बुध जन।
वह प्रगट किया है ज्ञानी ने, है ज्ञान वीर जिनके शासन ॥३२॥

धीर क्रिया पर रुचि रक्खे, अक्रियावाद को दूर करे।
सम्यग्दर्शन से दृष्टि शुद्ध, कर दुष्कर धर्माचरण करे ॥३३॥

सुन अर्थ धर्म से उपशोभित, उपदेश पुण्य पद मुनिवर का।
तज काम भोग और भारत को, भरतेश्वर पथिक बने शिव का ॥३४॥

सगर भूप ने सागरान्त, कारत का वैभव छोड दिया।
ऐश्वर्य - त्याग सयम लेकर, निजकर्म काट भव पार लिया ॥३५॥

महा ऋद्धिशाली चक्री, था मघवा महाकीर्तिधारी।
तज राज्य विभव इस भारत का, हो गया स्वत दीक्षाधारी ॥३६॥

सनत्कुमार नरपति चक्री, जो रूप सम्पदा का धारी।
सुत का करके राज्याभिषेक, उसने तपधारा हितकारी ॥३७॥

भारत का राज्य छोड चक्री, वे शान्तिनाथ साताकारी।
महा ऋद्धितज ले सयम, हो गये सिद्धि पद अधिकारी ॥३८॥

इक्ष्वाकुवश का श्रेष्ठ नृपति, था कुन्थू विशद कीर्तिवाला।
उस धैर्यशील ने तप कठोर, कर मोक्ष हस्तगत कर डाला ॥३९॥

वैसे राजर्षि महाबल ने, आकुलता हीन हृदय होकर।
कर उग्र तपस्या शिर देकर, पा लिया मोक्ष साधक बनकर ॥५१॥

ये शूरधीर दृढबली भूप, जिन शासन मे सब कुछ पाकर।
प्रव्रजित हुए, क्यो हेतु बिना, बन मत्त धीर विचरे भूपर ॥५२॥

अतियुक्तियुक्त प्रवचन मैंने, ये कहे सत्य जग सुखदायी।
तिर गये तिरे कइ पाएँगे, भव भार करे जो मन लायी ॥५३॥

कैसे कुहेतु को लेकर के, धृतिमान् लगाये अपना बल।,
जो सब सगो से मुक्त यहाँ, वह कर्म रहित होता निर्मल ॥५४॥

मणि रत्न जटित अगन वाले, उस रम्य सौध वातायन मे ।
बैठा पुर के चौराहो त्रिक चत्वर को देख रहा धन मे ॥८॥

तप नियम और सयमधारी, भरपूर शील गुण का आकर ।
देखा उसने पथ पर जाते, अति क्षमाशील सयत मुनिवर ॥५॥

एक दृष्टि से देख साधु को, मृगापुत्र मन ध्यान दिया ।
देखा था ऐसा रूप कही, चिन्तन से पर्दा दूर किया ॥६॥

उसको सयति के दर्शन से, शुभ भाव चित्त मे उदय हुए ।
हो मोह कर्म के उपशम से, गतिपूर्व-जन्म के स्मरण हुए ॥
देवलोक से च्युत होकर, इस मानुष भव मे वह आया ।
समनस्क ज्ञान के होने पर, प्राचीन जन्म की स्मृति पाया ॥७॥

जातिस्मरण ज्ञान पाकर, अति ऋद्धिमान रानी सुत को।
हो गया पुरातन भव परिचय, आचरण किया जो मुनिव्रत को ॥८॥

हो गया विमुख वह भोगो से, सयम मे मन अनुरक्त रहा।
आकर के जननी जनक पास, उसने यो अपना भाव कहा ॥९॥

मैने सुना है महाव्रत पाँचो, नरक और तिर्यक् के दु ख।
मात ! अनुज्ञा दे दीक्षा की, भव दु ख से मै हुआ विमुख ॥१०॥

अम्ब तात ! मैने भोगे, विपफल सम मीठे भोगो को।
परिणाम कटुक अति दुखदायी, आकर्पक लगते लोगो को ॥११॥

यह अस्थि चर्ममय तन नश्वर, मल युक्त अशुचि से पिण्ड बना।
अस्थिर आवास समझ इसको, यह दुख क्लेशो से पूर्ण सना ॥१२॥

इस अनित्य तन मे मैंने, रति भाव नही उपलब्ध किया।
पहले वा पीछे त्याग योग्य, जल बुद्बुद् सम अस्तित्व लिया ॥१३॥

मानुप का तन है सारहीन, जो व्याधि और रोगो का घर।
जरा मरण से ग्रस्त विश्व मे, रमण करूँ मैं ना क्षण भर ॥१४॥

है जन्म दु ख और जरा दु ख, जग व्याधिमरण के दु खभारी।
पाते है प्राणी जहा कप्ट, ससार अहो ! अतिभय कारी ॥१५॥

भूमि, गेह, सोना, नारी, वान्धव, सुत एव सुन्दर तन।
परवश हो सब तज जाना है, रुकना न एक भी है पल क्षण ॥१६॥

जैसे ही किम्पाकफलो का, परिणाम नही सुन्दर होता।
वैसे इन भोगे भोगो का, परिणाम नही हितकर होता ॥१७॥

जो वडे मार्ग पर प्रस्थित हो, कुछ सम्वल साथ नही लेता।
हो भूख प्यास से पीडित वह, पथ चलते अतिचिन्तित होता ॥१८॥

यों धर्म किए बिन जो प्राणी, जग से पर भव को जाते है।
हो व्याधि रोग से वह पीडित, पथ चलते दुःख उठाते है ॥१९॥

जो बडे मार्ग पर प्रस्थित हो, कुछ सम्बल पथ मे ले जाता।
हो भूख प्यास से,वर्जित वह, चलते पथ मे अति सुख पाता ॥२०॥

ऐसे ही धर्माराधन कर जो जग से परभव जाता है।
वेदना रहित वह लघुकर्मी, चलते पथ अतिसुख पाता है ॥२१॥

जैसे आग लगे घर मे, उस घर का जो स्वामी होता।
घर मे ही छोड असार वस्तु, है सार वस्तु बाहर लेता ॥२२॥

जरा-मरण की प्रबल आग मे, जलता ऐसे है जग सारा।
अपने को पार लगाऊँगा, आदेश आपका ले प्यारा ॥२३॥

मात पिता बोले उसको, प्रिय तनय श्रमण पद है दुस्तर।
गुण हजार धारण करते, भिक्षुक के होते हे दुष्कर ॥२४॥

शत्रु-मित्र सब जीवो मे, जगती पर समताभाव रहे।
आजीवन का व्रत दुष्कर है, प्राणातिपात से दूर रहे ॥२५॥

अप्रमत्त रह सदा काल, मिथ्याभाषण वर्जन करना।
बडा कठिन है सावधान मन, हित प्रिय सत्य सतत कहना ॥२६॥

बिना दिए दातोन आदि भी, ग्रहण व्रती को ना करना।
दिया हुआ भी एषणीय, निर्दोष वस्तु दुष्कर लेना ॥२७॥

काम भोग रस के ज्ञाता को, है कुशील का त्याग कठिन।
उग्र महाव्रत ब्रह्मचर्य को, धारण करना है महा कठिन ॥२८॥

धन धान्य तथा सेवक जन मे ममता का परिवर्जन करना।
बड़ा कठिन आरम्भ परिग्रह की, ममता मन से हरना ॥२९॥

आहार चतुर्विध रजनी मे, भोजन का वर्जन करना है।
सन्निधि के सचय का वर्जन, अतिकठिन साधु व्रत धरना है ॥३०॥

भूख प्यास सर्दी गर्मी, और दशमशक का कष्ट सहन।
दु खद शय्या आक्रोश वचन, तृणफास और मलधारण तन ॥३१॥

ताडन तर्जन वा वध बन्धन, है विविध परीषह मुनि मग मे।
याचना अलाभ का कष्ट छुपा, सहना होता भिक्षा जग मे ॥३२॥

है कपोत - सी वृत्ति और, अति दारुण दुखद शिरोलु चन।
है ब्रह्मचर्य सद् आत्मा का, धारण करते विरले सज्जन ॥३३॥

हे पुत्र ! योग्य सुख के तुम हो, सुकुमार सुमार्जित बचपन से।
निश्चय समर्थ तुम नही अहो, मुनिपद पालन करने जैसे ॥३४॥

है सयम गुण का भार महा, विश्राम नही है आजीवन।
यह लोहभार सम गुरुतर है, जिसका ढोना है महाकठिन ॥३५॥

नभ गगा के स्रोत तुल्य, प्रति स्रोत गमन जैसे दुस्तर।
भुज युग[1] से सागर तिरने सम, है पार गुणोदधि का दुस्तर ॥३६॥

सयम है रेत-कवल जैसे, निस्वाद और रसहीन यहाँ।
असिधारा पर चलने सम है, तप साधन करना कठिन महा ॥३७॥

एकाग्रदृष्टि से सर्पतुल्य, मुनिव्रत का पालन महाकठिन।
लोहे के जौ चर्वण[2] जैसा, चारित्र पालना बहुत कठिन ॥३८॥

जैसे जलती अग्नि शिखा को, पीना होता अति दुष्कर है।
वैसे यौवन मे श्रमणधर्म, पालन उससे भी दुस्तर है ॥३९॥

---

१ दो भुजाओ से

२ जौ चबाने जैसा

जैसे कपडे के थैले को, है अनिल पूर्ण[1] करना दुष्कर।
वैसे ही सत्व रहित जन से, मुनिव्रत का पालन है दुस्तर ॥४०॥

जैसे मन्दर गिरवर को, है तुला चढा तोलन दुष्कर।
वैसे निश्चल निर्भय मन से, मुनिव्रत पालन है अति दुस्तर ॥४१॥

जैसे युगल भुजाओ से, सागर का पार महादुष्कर।
उपशम विहीन नरको वैसे, दम-सिन्धु पार करना दुस्तर ॥४२॥

शब्दादि पाँच विध भोगो को, तुम भोग मनुज भव सफल करो।
हे पुत्र! भुक्तभोगी होकर, फिर श्रमण धर्म आचरण करो ॥४३॥

यह सुनकर मृगापुत्र बोला, हे तात! आपका सत्य वचन।
विषयो की प्यास नही जिसको, उसको मुश्किल है क्या पालन ॥४४॥

तन मन की दुस्सह पीड़ा को, हमने है वार अनन्त सही।
शत विध-दु ख भी वारवार, पीडित हमको हैं किये यहीं ॥४५॥

चार अन्त वाले भय-आकर, जरा मरण के कानन मे।
जन्म मरण दु ख सहे भय हर, इस जगती के आँगन मे ॥४६॥

जैसे पावक है उष्ण यहाँ, उससे अनन्तगुण उष्ण वहाँ।
है सही नरक में उष्ण वेदना, दुखदायी अतिकष्ट जहाँ ॥४७॥

जैसे यह सर्दी यहाँ बहुत, इससे अनन्तगुण शीत वहाँ।
हूँ सहा वेदना नरको मे, है शीत व्यथा अति कठिन जहाँ ॥४८॥

पाक-पात्र[2] मे क्रदन्न करता, पद ऊँचा सिर नीचा कर।
अमित वार मैं गया पकाया, जलते हुए हुताशन[3] पर ॥४९॥

---

१ हवा से भरना   २ कुभी पात्र   ३ अग्नि

महा दवानल तीव्र-ज्वाल मे, मरु की वज्र-बालुका[1] पर।
अमितवार मै गया जलाया, सरित्-कदम्ब[2] की रेती पर ॥५०॥

रोता बन्धु हीन कुम्भी मे, बाधा था ऊपर लटका कर।
काटा गया अमित बार मे, करवत या आरा मे देकर ॥५१॥

अत्यन्त तीक्ष्ण काँटो वाले, सीमल के ऊँचे तरु ऊपर।
क्षेपित हुआ पाश मे बधकर, खीचे जाने से इधर-उधर ॥५२॥

महायन्त्र मे इक्षु सदृश, निज कर्मो से पीला जाकर।
है दारुण शब्द किये मैने, बहुवार पाप का सचय कर ॥५३॥

काले शबल श्वान सूकर से, क्रन्दन करता मैं इधर उधर।
काटा फाडा और गिराया, गया बहुत ही इस भूपर ॥५४॥

अलसी रग समान भल्ल, लोहकदण्डो तलवारो से।
हुआ प्रखण्डित छिन्न-भिन्न, मे पाप कर्म के भारो से ॥५५॥

ज्वालायुक्त कील वाले, अयरथ[3] मे विवश बना जोडा।
रोझ सदृश चाबुक कीलो से, हाँक गिरा तन को तोडा ॥५६॥

गया जलाया और पकाया, ज्वलित चितानल मे देकर।
परवश ढका पाप कर्मो से, भैसे सम मैं दुख मे पडकर ॥५७॥

सदश तुण्ड और लोह तुण्ड, मे ढँक गृध्र पक्षीगण से।
बहुधा बलपूर्वक रुदन सहित, नोचा जाता था मैं उनसे ॥५८॥

मैं वैतरणी के तट पहुँचा, दौडा अति प्यास विकल होकर।
सोचा था, जल पीऊँगा, पर छुरिका से चीरा था धर कर ॥५९॥

१ वज्र के समान ककरीली कर्कशरेत २ नदी के तट की तप्त रेत
३ लोहे के रथ मे

अति तप्त हुआ मैं गर्मी से, असिपत्र महावन मे आया।
तन पर गिरते असि पत्रो से, छिद गया कष्ट वहुवा पाया ॥६०॥

मुद्गर मुसल मुसुण्ढि शूल से, चूर हुआ यह तन मेरा।
खो आशा टूटे अगो से, अमित वार दु ख आ घेरा ॥६१॥

मैं तीक्ष्ण धार वाली कैंची, छुरिका और तेज छुरे जैसे।
खण्डित पाटित उत्कीर्ण छिन्न, मैं हुआ बहुत उन अस्त्रो से ॥६२॥

कूट जाल और पाशो से, मृग तुल्य वहाँ पर-वश होकर।
मैं वहुत वार वाधा रोका, वा ठगा मार खाया तन पर ॥६३॥

काटो और मगर जालो मे, मच्छ सदृश परवश होकर।
गया वहुत खीचा फाडा, पकड़ा मारा उसमे जाकर ॥६४॥

वाज जाल अवलेपो से, खग तुल्य अनन्तीवार वहाँ।
पकडा चिपकाया वद्ध हुआ, एव मारा भी गया जहा ॥६५॥

जैसे वृक्ष वार्द्धिक के कर मे, फरसा कुठार आदिक द्वारा।
कूटा छीला दो टूक छेद, त्रक्षण पाया तन अति मेरा ॥६६॥

लोहे की भाँति लुहारो से, मुट्ठी चपेट आदिक द्वारा।
मैं वहुत वार पीटा कूटा, भेदा तन चूर्ण किया मारा ॥६७॥

ताम्बा लोहा रागा सीसा, कलकल रव करता पिघलाकर।
था गया पिलाया वहुत मुझे, करते क्रन्दन भैरव अविकल ॥६८॥

था मास खण्ड तुम को प्यारा, शूलारोपित कर खाता था।
यो याद दिला निज मास अग्नि सम लाल खिलाया जाता था ॥६९॥

सुरा, सीधु, मेरक, मदिरा, और मधु मे प्रीति रही तुमको।
यो याद दिला जलती चर्वी, और रक्त पिलाया था मुझको ॥७०॥

सदा भीत सत्रस्त दु:खित, और व्यथित रूप होकर हमने ।
परम दु खमय तीव्र व्यथा, का अनुभव किया बहुत हमने ॥७१॥

तीव्र चण्ड अति दुसह भयद, जो घोर प्रगाढ व्यथा भारी ।
नरक लोक मे तीव्र व्यथा के, अनुभव की आयी थी बारी ॥७२॥

हे तात ! मनुज के इस भव मे, जो व्यथा दिखाई देती है ।
इससे अनन्त-गुण बढी व्यथा, नरको मे पायी जाती है ॥७३॥

अनुभव किया सभी जन्मो मे, मैंने अतिशायी दु ख व्यथा ।
अन्तर निमेष का भी न मिला, हो साता जिसमे नही व्यथा ॥७४॥

फिर मात-पिता ने कहा पुत्र !, इच्छानुसार मुनि बन जाना ।
पर नही चिकित्सा मुनि-मग मे, तू इसे ध्यान मे ले जाना ॥७५॥

उसने कहा तात ! ऐसा हो, कहा आपने जो हमको ।
वन मे कौन चिकित्सा करता, पीडित मृग पक्षी के तन मे ॥७६॥

वन मे जैसे हिरण अकेला, स्वच्छन्द विचरता रहता है ।
ऐसे सयम तप से युत मैं, भी करुँ धर्म मन कहता है ॥७७॥

जैसे किसी महावन मे, मृग को आतक उदय लेता ।
रहे वृक्ष के मूल वहाँ, उसका उपचार कौन करता ॥७८॥

देता है उसको कौन दवा, और कौन पूछता सुख की बात ।
कौन उसे खाने पीने को, देता लाकर पानी भात ॥७९॥

जब होता है स्वस्थ हिरण, गोचर को तब वह जाता है ।
खाने पीने हित लता कुञ्ज, और जल तट पर वह आता है ॥८०॥

लताकुञ्ज और जलाशयो पर, खा पीकर मोद मानता है ।
मृग की चर्या से चलकर के, एकान्त शान्तिपथ जाता है ॥८१॥

ऐसे ही उठकर सयम मे, भिक्षुक अनियतचारी होकर।
सचार ऊर्ध्वगति करता है, मृग के समान चर्या चलकर ॥८२॥

जैसे मृग एक अनेक स्थान, रहता लेता जल तृण-गोचर।
अनियतचारी मुनि गोचरगत, निन्दा खिसा न करे तिलभर ॥८३॥

मैं मृगचर्या से विचरूँगा, ऐसा हो पुत्र! यथा सुख कर।
मात पिता से अनुज्ञात फिर, चले उपधि का वर्जन कर ॥८४॥

सब दु ख को क्षय करने वाली, पालूँगा मैं मृगचर्या को।
अम्ब! तुम्हारी अनुमति हो, जा पुत्र! यथा सुख शिव पथ को ॥८५॥

ऐसे मात पिता को उसने, विध-विध कहके अनुकूल किया।
ममता का बन्धन छेदन कर, अहि सम कचुक को त्याग दिया ॥८६॥

धनधान्य ऋद्धि और मित्रो को, सुत दारा एव बान्धव को।
वस्त्र लगे रज के समान, झटका कर दूर किये सबको ॥८७॥

पच महाव्रत पाच समिति, और तीन गुप्ति से युत होकर।
अन्तर बाहर तपचर्या मे, वे हुए उग्र तत्पर बनकर ॥८८॥

ममता और अहता तजकर, जो सग रहित गौरव त्यागी।
त्रस स्थावर सकल जीवगण पर, जिसके मन मे समता जागी ॥८९॥

लाभ-अलाभ तथा दु ख सुख, जो जीवन और मरण मे सम।
सम निन्दा और प्रशसा मे, सम्मान निरादर मे हो सम ॥९०॥

दण्ड शल्य गौरव कषाय, भय हास्य शोक से निवृत्त हो।
फल की इच्छा और बन्ध रहित, निश दिन रखता निर्मल मन जो ॥९१॥

प्रतिबन्ध न इह परभव मे हो, इच्छा से जीवन दूर रहे।
काटे या चन्दन लेप करे, अनशन होवे या अशन रहे ॥९२॥

अशुभ कर्मो के द्वारो का, सब ओर मार्ग अवरोध करे।
अध्यात्म ध्यान के योगो से, शुभ सयम शासन मे विचरे ॥९३॥

ऐसे सम्यग् ज्ञान-चरण से, दर्शन और तपस्या कर।
अतिशय शुद्ध भावना भावित, सम्यक् आत्मा को उज्ज्वल कर ॥९४॥

बहुत वर्ष तक श्रमण धर्म का, शुद्ध भाव से पालन कर।
श्रेष्ठ सिद्धि को प्राप्त किया, वह मासभक्त का अनशन कर ॥९५॥

सम्बुद्ध विज्ञ ऐसा करते, जो धर्म विचक्षण होते हैं।
मृगापुत्र ऋषिवर सम जो, भोगो से उन्मुख होते हैं ॥९६॥

महा प्रभावी महायशस्वी, मृगापुत्र का चरित कथन।
तप प्रधान श्रेष्ठ गतिवाला, लोक विदित सुन शुभ वर्णन ॥९७॥

जान जगत् मे दुखवर्द्धक धन, अति भयप्रद ममता बन्धन।
सुखकर मोक्ष प्रदायक उत्तम, धर्म धुराधर लेना मन ॥९८॥

२०. महानिर्ग्रन्थीय

सिद्ध और संयत आत्मा को, भावपूर्ण मैं करूँ नमन।
अर्थ धर्म बोधक अनुशासन, तथ्य सुनो जो करूँ कथन ॥१॥

प्रचुररत्न मगधाधिप श्रेणिक, मण्डिकुक्षि नामा उद्यान।
यात्रा विहार को निकला था, समयोचित लेकर सामान ॥२॥

नाना लता और विटपो से, खगकुल सेवित था वह उपवन।
नाना सुमनो से आच्छादित, लगता जैसे हो नन्दनवन ॥३॥

संयमयुक्त साधु को देखा, वह सुकुमार सुखोचित था।
बैठा तरु के मूल समाहित, ध्यानमग्न व्रतधारक था ॥४॥

उस संयत का रूप सुघड़ अति, देख भूप आकृष्ट हुआ।
अतुल और अतिविस्मयकारक त्याग देखकर चकित हुआ ॥५॥

अद्भुतवर्ण रूप भी अद्भुत, तथा आर्य का सौम्य स्वरूप।
कैसी क्षमा ! मुक्ति अद्भुत, निस्संग भोग से मन प्रतिरूप ॥६॥

उसके चरणो मे वन्दन कर, मुनि को प्रदक्षिण विधि करके।
अति दूर नही और नही निकट, प्रांजलि बोला नृप मनधर के ॥७॥

हे आर्य ! तरुण हो क्यो दीक्षित नयन ! भोगो का काल यही।
श्रामण्य धर्म मे आए हो, कारण बतलाओ हमे सही ॥८॥

मैं हूँ राजन ! जग मे अनाथ, है नाथ नही कोई मेरा।
ऐसा न किसी को पाता हूँ, अनुकम्पक हो या मित्र मेरा ॥६॥

यो सुन वह मगधाधिप श्रेणिक, प्रहसित मुख उस मुनि से बोला।
तुम जैसे ऋद्धियुक्त नर को, है नाथ कहो कैसे न मिला ॥१०॥

होता हूँ नाथ तुम्हारा मै, सयत भोगो का भोग करो।
हो मित्र ज्ञाति जन से परिवृत, दुर्लभ नर भव को सफल करो ॥११॥

हे मगधाधिप ! श्रेणिक तुम तो, अपने भी पूरे नाथ नही।
जो स्वय अनाथ वह हो कैसे, पर का जगत मे नाथ सही ॥१२॥

नरपति पहले से विस्मित था, सभ्रान्त हुआ फिर यो सुनकर।
मुनिवर के अश्रुत पूर्व वचन से, प्रेरित वह बोला विस्मय भर ॥१३॥

है हाथी घोडे नर मेरे, अन्त पुर एव नगर बडा।
मैं भोग रहा नर भोगो को, आज्ञा मे पुरजन सभी खडा ॥१४॥

सब काम भोग मिलते जिससे, वैसी सम्पत्ति जहाँ पर हो।
कैसे अनाथ वह कहलाये, मुनिवर असत्य मत हमे कहो ॥१५॥

तू नही जानता है अनाथ, और, नाथ शब्द का अर्थ कहा।
जैसा अनाथ होता राजन्, एव सनाथ का अर्थ यहाँ ॥१६॥

एक चित्त से सुनो भूप, तजकर मन से वैभव का मद।
जैसे अनाथ जग होता है, कैसे मैं बोल गया वह पद ॥१७॥

प्राचीन नगर को शर्माती, कौशाम्बी नामा है नगरी।
रहते थे वहाँ पिता मेरे, जिनकी सपद है गाठभरी ॥१८॥

यौवनवय मेरी आखो मे, हो गई वेदना अतुल वहाँ।
हो गया अग प्रत्यगो मे, विस्तीर्ण दा[illegible] व्यथित जहाँ ॥१९॥

जैसे कोई कुपित शत्रु, अति तीक्ष्णशस्त्र तन छेदो मे ।
देकर पीडा उत्पन्न करे, वैसी पीडा मुझ नयनो मे ॥२०॥

मेरे कटि मस्तक और हृदय, वेदना व्यथित होते उस क्षण ।
इन्द्रवज्र आघाततुल्य, पीडा होती थी अतिदारुण ॥२१॥

विद्या मन्त्र चिकित्सा के, आचार्य पास मेरे आए ।
थे अद्वितीय वे शास्त्र कुशल, और मत्र मूल मे यश पाए ॥२२॥

वे करें चिकित्सा चतुष्पाद[1], जिससे न स्वास्थ्य मे हो देरी ।
पर दु ख-मुक्त कर सके नही, बस है अनाथता यह मेरी ॥२३॥

वहुमूल्य वस्तुएँ मेरे हित, देने मे तात न की देरी ।
पर दु ख मुक्त वे कर न सके, वस यही अनाथता है मेरी ॥२४॥

पुत्र शोक से थी दु खार्त, हे महाराज ! माता मेरी ।
पर दु ख मुक्त वह कर न सकी, वस यही अनाथता है मेरी ॥२५॥

छोटे वडे सगे भाई, कुछ कर न सके रक्षा मेरी ।
वे मिटा न पाये दुख मेरा, वस यही अनाथता है मेरी ॥२६॥

छोटी वडी सगी वहने, कुछ कर न सकी रक्षा मेरी ।
वे हटा न पायी दुख मेरा, वस यही अनाथता है मेरी ॥२७॥

हे महाराज ! मुझसे प्रसन्न, प्रिय पतिव्रता पत्नी मेरी ।
निज अश्रु पूर्ण नयनो से थी, वे भिगा रही छाती मेरी ॥२८॥

अशन पान या स्नान गन्ध, और माल्य विलेपन आदि सभी ।
मेरे जाने या अनजाने, वाला ने भोग न किया कभी ॥२९॥

---

१ वैद्य रोगी, औषध एव परिचारक रूप चार प्रकार की चिकित्सा

हे महाराज ! उस बाला ने, ना की मुझसे क्षण भी दूरी ।
फिर भी न व्यथा कर सकी दूर, बस यही अनाथता है मेरी ॥३०॥

तब हार कहा मैने ऐसे, जगती मे दुस्सह बार-बार ।
इस परम वेदना का अनुभव, करना पडता है अमित वार ॥३१॥

विपुल वेदना से हो जाऊँ, यदि एक वार मै मुक्त यहाँ ।
तो क्षान्त दान्त और निरारभ, मुनि पद कर लूँ स्वीकार यहाँ ॥३२॥

हे राजन् ! ऐसा चिन्तन कर, सो गया शान्ति धारण करके ।
बीती रात्रि मिट गयी व्यथा, क्षण पल मे मुझको तज करके ॥३३॥

हो स्वस्थ सवेरे पूछ बन्धु, प्रव्रजित हुआ मै छोड सभी ।
बन शान्त दान्त और निरारभ, मुनिमार्ग पकडकर चला तभी ॥३४॥

तब ही से मैं नाथ हुआ हूँ, अपना और परायो का ।
त्रस एव स्थावर प्राणी का, जगती भर के सब जीवो का ॥३५॥

आत्मा है सरिता वैतरनी, है कूटशाल्मली आत्मा ही ।
आत्मा मेरी है कामधेनु, नन्दन कानन भी बनी रही ॥३६॥

दु ख सुख का कर्ता आत्मा है, एव उनका क्षयकर्ता है ।
विपरीत मार्ग रत-शत्रु और, शुभ कार्य लग्न सुखकर्ता है ॥३७॥

यह और अनाथता है राजन्, एकाग्र शान्त हो सुन लेना ।
जैसे मुनि धर्म ग्रहण कर भी, सीदित होते कातर नाना ॥३८॥

स्वीकार महाव्रत जो करके, पालन प्रमाद वश करे नही ।
रस गृद्ध असयत वह जड से, बन्धन का छेदन करे नही ॥३९॥

ईर्या भाषा तथा एषणा, निक्षेपादान जुगुप्सा मे ।
जिसकी सतर्कता रहे नही, जाता न वीर के वह पथ मे ॥४०॥

अस्थिर तप व्रत नियम भ्रष्ट, चिरकाल मुण्ड रुचि रखकर भी।
चिरकाल स्वय को पीडा दे, ससार पार करता न कभी ॥४१॥

पोली मुट्ठीवत् सारहीन, अनियन्त्रित खोटे पण जैसा।
क्या काचमणि वैदूर्य सदृश, पाये विज्ञो मे पद वैसा ॥४२॥

जो भ्रष्टवेश ले ऋषिध्वज से, जीविका चलाता है अपनी।
हो असयमी सयत कहता, चिर करे नष्ट सद्गति अपनी ॥४३॥

जैसे पीकर विष कालकूट, विधि रहित शस्त्र धारण करके।
अवश यक्ष सम हानि करे, जो धर्म विषय मे घुल करके ॥४४॥

जो लक्षण स्वप्न प्रयोग करे, आसक्त निमित्त कौतुक मे हो।
विस्मयकारी आस्रवजीवी, पाता न अन्त मे शरण अहो ॥४५॥

अतिशय अबोध से वह अशील, मुनि उलट दृष्टि है दु ख पाता।
दूषित कर मुनि पद हो कुरूप, तिर्यक् नारक भव मे जाता ॥४६॥

औद्देशिक नित्याग्र क्रीतकृत, दूषित कुछ भी जो नही तजे।
पावक सम जो हो सब भोजी, कर पाप मृत्यु से कुगति भजे ॥४७॥

निज दुष्ट वृत्ति जो हानि करे, वह गल छेदी रिपु करे नही।
मरणकाल मे खेद खिन्न, जानेगा सयमहीन कही ॥४८॥

है व्यर्थ श्रमण रुचि उस नर की, जो उत्तमार्थं विपरीत करे।
उसका है इह परलोक नही, वह दोनो जग का नाश करे ॥४९॥

ऐसे कुशील स्वच्छन्द साधु, करते जिनेन्द्र पथ का खण्डन।
कुररी समभोग स्वाद मूर्छित, पाते चिन्ता और पीडा मन ॥५०॥

अनुशासन ज्ञान गुणो से युत, मेधावी वाणी शुभ सुनकर।
तज के कुशील का पन्थ सभी, वह चले महामुनि पथ पग भर ॥५१॥

फिर चारित्राचार गुणान्वित, उत्तम सयम का पालन कर।
पाता उत्तम विपुल मोक्ष पद, आस्रव रहित कर्म क्षय कर ॥५२॥

महा प्रतिज्ञ यशस्वी मुनिवर, उग्रतपी और शान्त दान्त।
निर्ग्रन्थीय महाश्रुत का है, विस्तृत कथन किया निर्भ्रान्त ॥५३॥

श्रेणिक राजा तुष्ट हुआ, और हाथ जोडकर यो बोला।
निश्चय अनाथ का सही रूप, मेरे आगे तुमने खोला ॥५४॥

सुफल जन्म मानुप तेरा, और सफल लाभ तेरा है साथ।
तुम तीर्थंकर पथ अनुगामी, हो तुम सबन्धु और तुम्ही सनाथ ॥५५॥

हे सयत ! तुम सब जीवो के, तथा अनाथो के हो नाथ।
चाह रहा अनुशासन तुम से, और क्षमा हे कृपा निधान ॥५६॥

ध्यान विघ्न जो किया तुम्हारा, मैंने तुमसे यो पृच्छा कर।
भोगो से जो किया निमन्त्रण, वह अपराध क्षमा दे कर ॥५७॥

परम भक्ति से राजसिंह वह, श्रमण सिंह की स्तवना कर।
विमल चित्त से धर्मलीन हो, गया सकल परिजन लेकर ॥५८॥

पुलकित रोमकूप हो भूपति, दे आवर्तन मुनि वन्दन कर।
सविनय भू पर शिर टेक दिया, फिर चला गया हर्षित होकर ॥५९॥

त्रिगुप्ति गुप्त गुण से समृद्ध, निर्मोह दण्ड त्रय विरत श्रमण।
उन्मुक्त भाव से भूतल पर, खगवत् वह करता रहा भ्रमण ॥६०॥

★

२१. समुद्रपालीय

चम्पा मे रहता था श्रावक, जो वणिक् नाम से शुभ पालित ।
महावीर जिनराज प्रभु का, शिष्य मार्ग पर था चालित ॥१॥

निर्ग्रन्थ वचन मे अतिकोविद, श्रावक व्रत को उसने पाया ।
वाणिज्य हेतु चल नौका से, पिहुण्ड नगर को वह आया ॥२॥

पिहुण्ड नगर धधा करते, निज पुत्री दी व्यापारी ने ।
उस गर्भवती को ले निजपुर, प्रस्थान किया व्रतधारी ने ॥३॥

पालित पत्नी ने सागर मे, शुभ पुत्र रत्न को जन्म दिया ।
सागर मे शिशु ने जन्म लिया, यो समुद्र पाल यह नाम किया ॥४॥

सकुशल चम्पा मे पहुँच, वीर-श्रावक व्यापारी घर आया ।
सुख योग्य पुत्र वह उसके घर, सुखदायी-सवर्धन पाया ॥५॥

कला बहत्तर सीखी उसने, एव हुआ नीति विद्वान् ।
भरी जवानी और सम्पदा, प्रिय दर्शन था रूप महान् ॥६॥

रूपिणी नाम की रूपवती, पत्नी ले आए पिता उसे ।
दोगुन्दक सुरवत् रम्य महल, करता क्रीड़ा ले साथ जिसे ॥७॥

प्रासाद झरोखे मे बैठा, देखा उसने था एक वार ।
ले जाते वध्य नगर वाहर, वध-मण्डन पे शोभित उस वार ॥८॥

चोर देख वैराग्य जगा, फिर समुद्रपाल बोला ऐसा।
अहो ! अशुभ कर्मों का फल, अवसान कटुक होता कैसा ॥६॥

सम्बोध प्राप्त कर ज्ञानवान, वैराग्य परम वह प्राप्त किया।
मात पिता की अनुमति पा, अनगार प्रव्रज्या मार्ग लिया ॥१०॥

अति मोहपूर्ण आसक्ति भाव, तज महा क्लेश अति भयकारी।
व्रतशील परीषह के सहिष्णु, पर्याय धर्म मे रुचिधारी ॥११॥

व्रत सत्य अहिंसा ब्रह्मचर्य, अस्तेय असग्रह जिनदेशित।
कर पच महाव्रत को धारण, विचरे निर्मल मन वह पण्डित ॥१२॥

सब जीवो पर दयानुकम्पी, क्षमता से सहे ब्रह्मचारी।
सावद्य योग का वर्जन कर, विजितेन्द्रिय विचरे व्रतधारी ॥१३॥

उचित काल सब कार्य करे, निजशक्ति समझ कर जग विहरे।
दारुण शब्दो से हरिसम जो, अप्रिय बोले ना त्रास धरे ॥१४॥

मध्यस्थ चले जग की सुनकर, प्रिय अप्रिय सब को सहन करे।
ना सबमे वैसी चाह करे, पूजा निन्दा न चित्त धरे ॥१५॥

विविध भाव होते मनुजो मे, जिनको मुनि मन नियमन करते।
भय से दारुण हो कष्ट वहाँ, तिर्यंग् नर या सुरके होते ॥१६॥

आते परिषह दुस्सह अनेक, अतिकायर खिन्न जहाँ होते।
पाकर उनको ना व्यथित बने, रण मुख गजेन्द्र समस्थिर रहते ॥१७॥

शीतोष्ण, मशक, तृण, स्पर्श दश, आतक विविध तन स्पर्श करे।
मुनि शात भाव से सहन करे, कृत पूर्व कर्म को दूर करे ॥१८॥

राग द्वेष और मोह त्याग कर, संत विचक्षण नित्य कहाँ।
वायु अकम्पित मेरु तुल्य हो, आत्म गुप्त दु ख सहे वहाँ ॥१९॥

ऊँचा नीचा ना भाव करे मुनि, पूजा निन्दा ना मन लाता।
ऋजु भाव हृदय धरके ऋषिवर, हो पाप-विरत शिवपथ पाता ॥२०॥

रति अरति सहिष्णु आत्मार्थी, परिचय परित्यागी दोष विरत।
परमार्थ निरत हो छिन्न शोक, निर्ममी अकिंचन सयम रत ॥२१॥

निर्दोष स्थान मे रहे श्रमण, उपलेप और बीजादि रहित।
महायशस्वी ऋपि सेवित, परिषह सहते तन मोहरहित ॥२२॥

कर प्राप्त ज्ञान सद्ज्ञानो से, मुनि श्रेष्ठ धर्म आचरण करे।
हो परम ज्ञान और यशधारी, नभ मे रवि सम उद्योत करे ॥२३॥

कर पुण्य-पाप दोनो का क्षय, सयम मे निश्चल विप्रमुक्त।
सागर सम तिरके भव समुद्र, मुनि समुद समुद्र हो गया मुक्त ॥२४॥

☆

२२. रथनेमीय

था शौर्यपुरी मे एक नृपति, धन जन पुर से वैभवशाली।
शुभ-राजलक्षणो से शोभित, वसुदेव नाम था सुखकारी ॥१॥

उसको पत्नी दो प्यारी थी, रोहिणी देवकी जग जानी।
थे उनके परम दुलारे दो, सुत राम कृष्ण अति गुण खानी ॥२॥

सोरियपुर का भूपति था, अत्यन्त ऋद्धि वैभवधारी।
था जिसका नाम समुद्रविजय, जो राजलक्षणो का धारी ॥३॥

नृप की पत्नी का नाम शिवा, सुत उनका महा यशस्वी था।
जो अरिष्टनेमि जिन लोकनाथ, और दमी जनो का स्वामी था ॥४॥

श्रीरिट्ठनेमि शुभ नामवान्, स्वर लक्षण से अतिशोभित थे।
अष्ट सहस्र लक्षणधारी, तन-श्याम गोत्र से गौतम थे ॥५॥

वज्र ऋषभ सँहनन भला, मत्स्योदर आकृति सुखकारी।
उनके हित कन्या राजिमती, केशव[1] ने माँगी हितकारी ॥६॥

वह परम सुशीला नृपतनया, अतिशय मनहर दर्शन वाली।
नारी लक्षण से सँपन्ना, विद्युत् ज्यो तेज प्रभावाली ॥७॥

---

१ श्री कृष्ण

बोले कन्या के पिता वहाँ, अति ऋद्धि युक्त नारायण को ।
आयें कुमार मेरे घर पर, जिससे मैं कन्या दूँ उनको ॥८॥

नहला औषध-मिश्रित जल से, कौतुक और मगल करवाये ।
धारण कर उत्तम दिव्य वस्त्र, आमरण विभूषित हो आये ॥६॥

वासुदेव के मतवाले, अति ज्येष्ट नाग[1] पर चढ आये ।
अत्यन्त सुशोभित लगते थे, ज्यो शिर पर चूडामणि भाये ॥१०॥

अत्युच्च छत्र चामर युग से, थे नेमिनाथ शोभित अतिशय ।
सब ओर दर्शाह जन सेवित थे, लगते ज्यो तन मे श्रेष्ठ हृदय ॥११॥

चतुरग सजायी सेना से, नेमीश्वर क्रमश घिरे रहे ।
तूर्यो[2] के दिव्य निनादो से, गु जित नभ मण्डल शोभ रहे ॥१२॥

ऐसी अतिशय शुभ ऋद्धि और, अति श्रेष्ठ कान्ति को वहन किये ।
वह वृष्णि वश के श्रेष्ठ तनय, निज भव्य भवन से निकल गये ॥१३॥

नगरी मे जाते नेमी ने, भयभीत जीव को देख वहाँ ।
दु ख पीडित करते करुण शब्द, पजड़ बाडो मे रुके जहाँ ॥१४॥

जीवन के अन्तिम क्षण गिनते, मासार्थ भक्ष्यहित जो लाए ।
यह देख प्राज्ञ नेम प्रभु ने, सारथि को ऐसे फरमाए ॥१५॥

किसलिए दीन प्राणी ये सब, जीवन और सुख के अभिलाषी ।
पजर बाड़ो मे रोके हैं, निर्दोष गले मे दे फाँसी ॥१६॥

सुनकर वह सारथि तब बोला, ये भद्र जीव जो आए हैं ।
तेरे वैवाहिक कार्यो मे, बहुजन भोजन हित लाए हैं ॥१७॥

---

१ हाथी २ वाद्य

बहु जीव विनाशक सारथि के, सुन वचन नेमिवर खिन्न हुए।
उस महाप्राज्ञ ने यह सोचा, जीवो पर करुणा भाव लिए ॥१८॥

मेरे कारण इन जीवो की, जो हिंसा होगी भयकारी।
यह मेरे लिए नही श्रेयस्—परभव मे होगा सुखकारी ॥१९॥

वह महायशस्वी राजपुत्र, कटिसूत्र और कुण्डल जोडे।
दे दिए हर्ष से सारथि को, आभूषण तन के सब छोडे ॥२०॥

व्रतभाव जगे जब ही मन मे, औचित्य मनाने सुर आए।
परिषद् के सग सकल वैभव, वे अपने साथ लिए आए ॥२१॥

देव मनुष्यो से घिरकर, वे शिविका पर आरूढ हुए।
द्वारिकापुरी से चल करके, गिरिनार धाम जा ठहर गए ॥२२॥

उद्यान पहुँच वे रिठनेमि, शिविका से नीचे उतर गए।
थे उनके साथ हजारो जन, चित्रा मे वे निष्क्रमण किए ॥२३॥

सौरभ से सुरभित अतिकोमल, घुँघराले बालो को प्रभु ने।
हो शान्त भाव से पचमुष्टि, निज लोच किया जिन मुनि बनने ॥२४॥

उस लुप्तकेश और इन्द्रियजित, प्रभु से बोले यो वासुदेव।
तुम इष्ट मनोरथ शीघ्र प्राप्त, करलो जग मे हे दमी देव ! ॥२५॥

दर्शन तथा ज्ञान बल से, एव शुभ चारित्रिक बल से।
तुम वढो सदा इस जीवन मे, पालन कर क्षान्ति मुक्त मन से ॥२६॥

ऐसे वे राम तथा केशव, यदुश्रेष्ठ और कितने ही जन।
द्वारिकापुरी को लौट गये, करके मुनिवर को हित वन्दन ॥२७॥

प्रिय सखियो से वह राज-सुता, मुनिव्रत मे उनकी दीक्षा सुनकर।
हो गयी शोक से मौन, हँसी, आनन्द और खुशियाँ तजकर ॥२८॥

मन ही मन फिर उसने सोचा, धिक्कार है मेरे जीवन को।
है उचित हमारी भी दीक्षा, कारण वे छोड गए हमको ॥२९॥

भौरो के तुल्य स्वकेशो को, कघी और कूर्च सँवारे वे।
कर दिया स्वत लुँचन उनको, अतिवीर और कृत निश्चय वे ॥३०॥

उस इन्द्रियजित् लुँचितकेशा, को वासुदेव वोले ऐसे।
भव सागर पार करो कन्ये, अतिशीघ्र सफल हो व्रत जैसे ॥३१॥

वह शीलवती लेकर दीक्षा, द्वारिकापुरी मे वहुजन को।
उस वहुश्रुता ने दीक्षा दी, अपने जन एव परिजन को ॥३२॥

जा रही रैवतक गिरि पर जव, वर्षा से पथ मे भीग गयी।
गिर रही बूद तम छाया था, तव गिरि-गह्वर मे चली गयी ॥३३॥

वस्त्रो को दूर किए तन से, जैसी जन्मी वैसा देखा।
रथनेमि देख मन भग्न हुआ, फिर उसने भी इसको देखा ॥३४॥

एकान्त स्थान उस सयत को, लख डरी सती गिरि गह्वर मे।
कर वाहुपाश से सगोपन, कपित तन वैठ गयी क्षण मे ॥३५॥

रथनेमि समुद्रविजय सुत ने, अवसर का कैसा लाभ लिया।
उस भीत प्रकम्पित साध्वी को, निर्वस्त्र देख यह कथन किया ॥३६॥

हे सुघड रूप! सुन्दर भाषिणि, भद्रे! मैं हूँ रथनेमि यहाँ।
होगी न तुझे कोई पीडा, कर सुतनु! हमे स्वीकार यहाँ ॥३७॥

आ इन्द्रिय-सुख भोगे तब तक, निश्चय नर जीवन दुर्लभ है।
हो भुक्त-भोग हम पीछे फिर, शिव माग चले भव दुर्लभ है ॥३८॥

उत्साह-भग्न सयम पथ मे, रथनेमि श्रमण को देख वहाँ।
असभ्रान्त मन राजीमति, अपने तन को ढँक लिया वहाँ ॥३९॥

नृपवर कन्या वह राजीमति, व्रत और नियम मे थी सुस्थिर।
कुल जाति शील रक्षण करती, वोली उस मुनि को साहसधर ॥४०॥

वैश्रमण रूप से यदि तुम हो, लालित्य छटा से नलकूवर।
फिर भी न कभी मै चाह करूँ, तुम चाहो शक्र बनो भू पर ॥
धूमकेतु जलते पावक मे, सर्प अगन्धनकुल वाले।
करते प्रवेश पर वान्त नही, पीते जीवन की इच्छा ले ॥४१॥

हे अयशकाम ! धिक्कार तुम्हे, जो तू भोगो के कारण से।
यह वान्त भोग पीना चाहो, है मरण श्रेष्ठ तन धारण से ॥४२॥

मै भोजराज की पुत्री हूँ, तुम अन्धककुल के हो भूपण।
हम गन्धक अहि सम बने नही, निश्चल मन सयम कर पालन॥४३॥

यदि देख-देख नारी जन को, उनके प्रति राग करोगे तो।
पवनाहत हड जैसे जग मे, तुम अस्थिर चित्त बनोगे तो ॥४४॥

गोपाल और जो भाडपाल, होते ना स्वामी उस धन के।
श्रामण्य भाव के तुम भी त्यो, स्वामी न बनोगे जीवन के ॥
तू क्रोध मान का निग्रह कर, तज माया एव लोभ सभी।
इन्द्रिय गण को वश मे लेकर, हो स्वय पाप से दूर अभी ॥४५॥

सयम शीला उस राजिमती के, हितकारी वचनो को सुनकर।
अकुश से गजवत् रथनेमि, सद्धर्म मार्ग मे हुए अचर ॥४६॥

हो गया जितेन्द्रिय, मन वाणी, और गुप्तकाय से भी निश्चल।
सुस्थिर मुनिव्रत का स्पर्श किया, आजीवन धारणकर व्रत निर्मल ॥४७॥

अतिउग्र तपस्या को करके, बन गए केवली वे दोनो।
सारे कर्मो का क्षय करके, पा गए श्रेष्ठ सिद्धि दोनो ॥४८॥

सम्बुद्ध विचक्षण पण्डित जन, ऐसा ही जग मे करते है।
जैसे रथनेमि हुए वैसे, भोगोपभोग से डरते है ॥४९॥

२३ : केशि-गौतमीय

थे लोक सुपूजित अर्हन् जिन, शुभ पार्श्वनाम जग जन जाने।
सबोधयुक्त सर्वज्ञ धर्म के, तीर्थंकर थे जग माने ।।१।।

उस लोक प्रदीपक जिनवर के, थे शिष्य महायश के धारी।
शुभ नाम श्रमण केशी कुमार, थे ज्ञान चरण के भण्डारी ।।२।।

श्रुत और अवधि त्रय ज्ञान धरे, मुनि सघ सहित शोभा पाये।
ग्रामानुग्राम चलते-फिरते, सावत्थी नगरी वे आये ।।३।।

उस नगरी के ही पास एक, उद्यान नाम तिन्दुक जिसका।
वे ठहर गये उसमे जाकर, प्रासुक सस्तारक था उसका ।।४।।

फिर उसी समय मे वर्धमानप्रभु, धर्म तीर्थंकर जिनवर थे।
सर्वलोक विश्रुत मुनि नायक, पूर्ण ज्ञान के धारक थे ।।५।।

उस लोक प्रकाशक जिनवर के, प्रिय शिष्य महायश के धारी।
अतिशय ज्ञानी गौतम नामा, थे ज्ञान-क्रिया के भण्डारी ।।६।।

थे द्वादशाग-विन् श्रुत ज्ञानी, निज शिष्य सघ मन भाये थे।
ग्रामानुग्राम विचरण करते, सावत्थी पुर मे आये थे ।।७।।

उस नगरी के परिसर मे था, उद्यान नाम कोष्ठक जिसका।
वे ठहर गये उसमे जाकर, था जीव रहित आसन उनका ।।८।।

केशी और गौतम विचर रहे, उज्ज्वल सयम यश के धारी ।
थे दोनो मुनिवर ज्ञान लीन, तप सयम समता के धारी ॥९॥

दोनो के मुनि सघो मे, सयमी तपस्वी जन गण मे ।
एक तात्त्विक चिन्ता उदित हुई, दोनो त्रायी गुणवन्तो मे ॥१०॥

है कैसा धर्म हमारा यह, अथवा यह धर्म अहो कैसा ।
आचार धर्म यह अथवा वह, दोनो मे भेद कहो कैसा ॥११॥

है किया पार्श्व ने प्रतिपादन, यह चातुर्यामिक पथ जग मे ।
है पच महाव्रत मय शिवपथ, प्रभु वर्धमान का व्रत जग मे ॥१२॥

है धर्म अचेलक वर्धमान का, पार्श्व-धर्म शुभ-वस्त्र सहित ।
एक कार्य करने वाले, दो मे ऐसा क्यो भेद विहित ॥१३॥

केशी गौतम ने शिष्यो के, इस तर्कवाद को सुन करके ।
मन ही मन स्वय विचार किया, निर्णय करना सब मिल करके ॥१४॥

विनय-धर्म ज्ञाता गौतम, निज शिष्य सघ से घिरे हुए ।
आदर करने हित ज्येष्ठ वश को, तिन्दुकवन चलकर आए ॥१५॥

केशी ने अपनी सन्निधि मे, गौतम मुनि को देखा आया ।
यथायोग्य सन्मान भक्तिकर, निज मन को सन्तुष्ट किया ॥१६॥

जीव रहित शालि आदिक के, पचम पयाल कुश तृण लाये ।
गौतम के आसन हित उनने, शीघ्रातिशीघ्र सब लगवाये ॥१७॥

केशी श्रमण और गौतम, दोनो ही शुभ यश के धारी ।
चन्द्र-सूर्य सम वैठे दोनो, शोभा पाते व्रतधारी ॥१८॥

परमत के वहुत व्रती आए, कौतुककामी कई दर्शन को ।
कतिपय सहस्र दर्शक गृहस्थ, जुट गये ज्ञान रस पीने को ॥१९॥

गन्धर्व देव दानव राक्षस, और यक्ष तथा कई किन्नर गण।
कितने अदृश्य जीवो का भी, हो गया वहाँ पर शुभ मेलन ॥२०॥

बोले केशी यो गौतम को, हे महाभाग पूछे तुमको।
केशी के कहने पर बोले, गौतम हर्षित यो मुनिवर को ॥२१॥

केशी से गौतम यो बोले, भगवन्! जो इच्छा हो प्रश्न करे।
अनुमति केशी गौतम से ले, बोले शका को दूर करे ॥२२॥

प्रभु पार्श्वनाथ ने चतुर्याम, चारित्र कहा मुनिराजो का।
पच महाव्रत धर्म कहा, श्री वर्धमान ने मुनि जन का ॥२३॥

एक कार्य मे लगे हुए, दोनो मे अन्तर, कारण क्या।
इस धर्म द्वैध को देख प्राज्ञ, सशय मन मे ना होता क्या ॥२४॥

केशी कुमार के यो कहते, गौतम ने वचन कहा ऐसा।
धर्मार्थ तत्व के निश्चय मे, प्रज्ञा सद्-बोध करे वैसा ॥२५॥

पहले के मुनि थे मूढ सरल, होते पिछले के वक्र मूढ।
मध्यम के प्राज्ञ और ऋजुमति, अतएव किये दो भेद गूढ ॥२६॥

प्रथम तीर्थ मे ग्रहण कठिन, अन्तिम को दुष्कर है पालन।
है मध्य तीर्थ के साधु योग्य, विधिवत् लेकर करते पालन ॥२७॥

हे गौतम! बुद्धि भली तेरी, हो गया दूर मेरा सशय।
है एक दूसरा भी सशय, कहदो मुझको गौतम निर्भय ॥२८॥

है धर्म अचेलक मुनियो का, यह वर्धमान ने कथन किया।
पर पार्श्व सचेलक वर्ण युक्त, शुभ धर्म मार्ग है बतलाया ॥२९॥

जब लक्ष्य हमारा एक यहाँ, फिर इस विभेद का क्या कारण।
मेधाविन्! इन दो वेषो से, सशय न बढे हो क्या वारण ॥३०॥

केशी के ऐसा कहने पर, हर्षित मन गौतम यह बोले।
विमलज्ञान से मर्म समझ, धर्मोपकरण प्रभु ने खोले ।।३१।।

जन की प्रतीति के हेतु यहाँ, है भिन्न वेप प्रभु वतलाये।
सयम यात्रा और भेद ग्रहण, शुभ लिग प्रयोजन जग गाये ।।३२।।

सद्भूत मोक्ष के साधन मे, निश्चय मत की जिज्ञासा हो।
सद् दर्शन ज्ञान चरण साधन, निश्चय स्वरूप की लिप्सा हो ।।३३।।

गौतम है बुद्धि भली तेरी, हो गया दूर मेरा सशय।
है एक दूसरा भी सशय, उसका तुम उत्तर दो निर्भय ।।३४।।

गौतम ! इन शत्रु सहस्रो के, तुम मध्य भाग मे ठहरे हो।
वे तुम्हे जीतने आते है, कैसे तुम इनको हरते हो ।।३५।।

एक विजय से पाँच विजित, और पच विजय से दश जीते।
उन दश पर विजय मिलाने से, सारे अरि को हमने जीते ।।३६।।

है कहे गये वे कौन शत्रु, केशी ने पूछा गौतम से।
केशी की सुनकर कही वात, गौतम वोले हर्षित मन से ।।३७।।

अविजित आत्मा है एक शत्रु, इन्द्रिय पचक क्रोधादि चार।
उचित रीति से जीत उन्हे, करता हूँ मुनि ! मै जग सचार ।।३८।।

हे गौतम ! बुद्धि भली तेरी, हो गया दूर मेरा मशय।
हे एक दूसरा भी सशय, उसको तुम दूर करो निर्भय ।।३९।।

तनधारी जग मे वहुतेरे, अतिपाशवद्ध जन फिरते है।
हो पाश मुक्त हल्का वनकर, मुनि ! कैसे यहाँ विचरते हैं ।।४०।।

सर्वथा काट उन पाशो को, और नष्ट साधनो से करके।
म पाश मुक्त विचरूँ जग मे, हे श्रमण ! पाप हल्का करके ।।४१।।

कहते है पाश किसे जग मे, पूछा केशी ने गौतम को।
केशी के ऐसा कहने पर, गौतम उत्तर वोले उनको ॥४२॥

है राग-रोप के तीव्र पाश, और स्नेह पाश अति भयकर है।
मै काट उन्हे सत्साधन से, विचरूँ सुनीति से सुखकर है ॥४३॥

गौतम! है बुद्धि भली तेरी, हो गया दूर मेरा सशय।
है एक दूसरा भी सशय, उसको तुम कहदो हो निर्भय ॥४४॥

है अन्तर्मन उत्पन्न हुई, हे गौतम! लतिका विपवाली।
इस पर विप फल है अति वढते, कैसे उन्मूलन कर डाली ॥४५॥

वह लता सर्वथा काट और, कर दिया मूल से उन्मूलन।
विचरूँ सुनीति से वसुधा पर, हो गया दूर है विप भक्षण ॥४६॥

केशी गौतम से यो वोले, है लता कौन-सी वतलाई।
केशी के ऐसा कहने पर, गौतम ने वाणी फरमाई ॥४७॥

है भव-तृष्णा ही भीमलता, और दुखद कुफल उसमे लगते।
उसको उखाड करके जड से, हम यथा न्याय विचरण करते ॥४८॥

हे गौतम! बुद्धि भली तेरी, हो गया दूर मेरा सशय।
है एक दूसरा भी सशय, उसका उत्तर कह दो निर्भय ॥४९॥

प्रज्ज्वलित घोर यह पावक है, गौतम! तन मे स्थित दहक रही।
कैसे तुमने है शान्त किया, जो नाम मात्र भी दीप्त नही ॥५०॥

महामेघ के शीतल जल से, शीतल निर्मल जल लेकर।
मै सतत सीचता हूँ उसको, हो सिक्त न दाह करे मुझ पर ॥५१॥

है अनल कौन सी वतलाई, केशी ने पूछा गौतम को।
केशी के ऐसा कहने पर, गौतम यह वचन कहे उनको ॥५२॥

है अनल कषाये बतलाई, श्रुतशील तपस्या वारि कहा।
श्रुत शीलधार से अभिहत हो, शीतल बन वह ना जला रहा ।।५३।।

हे गौतम! बुद्धि भली तेरी, हो गया दूर मेरा सशय।
है एक दूसरा भी सशय, मुझको तुम कह दो हो निर्भय ।।५४।।

यह बडा साहसी और भयद, यह दुष्ट अश्व है दौड रहा।
उस पर तुम चढे हुए गौतम, क्यो नही तुम्हे है गिरा रहा ।।५५।।

भगते उस घोडे को मैने, श्रुत-रश्मि लगा स्वाधीन किया।
यह सुपथ पकडकर चलता है, उत्पथ जाने से रोक लिया ।।५६।।

है कौन अश्व तुमने माना, केशी ने पूछा गौतम को।
केशी के ऐसा कहने पर, गौतम यह वचन कहे उनको ।।५७।।

यह दुष्ट अश्व जो दौड रहा, है भीम साहसी मन मेरा।
सम्यक् शिक्षा से निग्रह पा, है अश्व बना वश मे मेरा ।।५८।।

हे गौतम! बुद्धि भली तेरी, हो गया दूर मेरा सशय।
है एक दूसरा भी सशय, उसको तुम कहो मुझे निर्भय ।।५९।।

हे कुपथ बहुत इस जगती मे, जिनसे कई जीव उलझ पडते।
हो गौतम! कैसे सत्पथ पर, तुम अविचल मन होकर चलते ।।६०।।

जो मार्ग पकड कर चलता है, अथवा जो उत्पथ गमन करे।
हे श्रमण! ज्ञात है सब मुझको, अतएव न चचल चित्त धरे ।।६१।।

है किसको कहते मार्ग यहाँ, केशी ने पूछा गौतम को।
केशी के ऐसा कहने पर, गौतम उत्तर बोले उनको ।।६२।।

जो व्रती बने है कुवचन के, वे सभी कुपथगामी जग मे।
जिन कथित मार्ग सन्मार्ग कहा, है सर्वोत्तम यह शिवपथ मे ।।६३।।

हे गौतम ! बुद्धि भली तेरी, हो गया दूर मेरा सशय।
है एक दूसरा भी सशय, उसको तुम दूरकरो तज भय ॥६४॥

पानी के प्रवल वहावो मे, वहते गिरते जग जीवो के।
गति, शरण, प्रतिष्ठा और द्वीप, मुनि ! कौन सहारा जीवन के ॥६५॥

है एक द्वीप जल मध्य वडा, अति लम्वा चौडा स्थान जहाँ।
अति वेगवती जलधारा की, होती न पहुँच है कभी वहाँ ॥६६॥

कहते है द्वीप यहाँ किसको, केशी ने पूछा गौतम को।
केशी के ऐसा कहने पर, गौतम यह वचन कहे उनको ॥६७॥

जरा मरण के वेगो मे, पड मरने वाले जीवो के।
है धर्म प्रतिष्ठा द्वीप और, गति रक्षक उत्तम प्राणी के ॥६८॥

हे गौतम ! बुद्धि भली तेरी, हो गया दूर मेरा सशय।
है एक दूसरा भी सशय, उसको तुम कहदो हो निर्भय ॥६९॥

है सागर महावेग वाला, जिसमे नौका इत-उत जाती।
उस पर तुम गौतम चढे हुए, यह किस विध तट पर पहुँचाती ॥७०॥

जो छिद्रयुक्त नौका होती, वह पार नही जा सकती है।
पर जिसमे छिद्र नही होता, बस पार वही जा सकती है ॥७१॥

किसको कहते है नाव यहाँ, केशी ने पूछा गौतम को।
केशी के ऐसा कहने पर, गौतम यो वचन कहे उनको ॥७२॥

कहते शरीर को नाव यहाँ, चालक इसका है जीव कुशल।
सागर ससार कहा जग मे, तरते ऋषि जिनका आत्म सवल ॥७३॥

हे गौतम बुद्धि भली तेरी, हो गया दूर मेरा सशय।
है एक दूसरा भी मशय, उसको वतला दो हो निर्भय ॥७४॥

है दृष्टि वन्द करने वाले, अति निविड तिमिर मे जीव पड़े ।
उन सारे जीवो को जग मे, उद्योत वताओ कौन करे ।।७५।।

जो सकल लोक उद्योत करे, निर्मल दिनकर है हुआ उदित ।
वही करेगा सव जग के, प्राणीगण का मन आलोकित ।।७६।।

है भानु यहाँ किसको कहते, केशी ने पूछा गौतम को ।
केशी के ऐसा कहने पर, गौतम यो वचन कहे उनको ।।७७।।

हो गया क्षीण भव भय जिसका, सर्वज्ञ वही है जिन भास्कर ।
वह सभी लोक के प्राणी का, अन्तर्मन कर देगा भास्वर ।।७८।।

हे गौतम ! बुद्धि भली तेरी, हो गया दूर मेरा सशय ।
है एक दूसरा भी सशय, उसको वतला दो हो निर्भय ।।७९।।

तन मन के दुखो से पीडित, इन जग जीवो के लिए यहाँ ।
क्षेमकर शिव और निरावाध, तुम मान रहे हो स्थान कहाँ ।।८०।।

है ध्रुवस्थान जग के ऊपर, जिसको पाना है वडा कठिन ।
है नही वेदना और व्याधि, जरता[1] का सशय तथा मरण ।।८१।।

केशी ने गौतम को पूछा, वह स्थान कौनसा यहाँ कहा ।
केशी के ऐसा कहने पर, गौतम ने उत्तर निम्न कहा ।।८२।।

निर्वाण अवाधित और सिद्धि, लोकाग्र स्थान भी इसे कहा ।
शिव क्षेम उपद्रव रहित स्थान, जिस पर जाते है श्रमण महा ।।८३।।

वह लोक शिखर पर स्थान रहा, शाश्वत पद पाना हे दुर्लभ ।
भव भ्रमण अन्त करने वाले, करते न शोक पाकर मुनिजन ।।८४।।

---

१ वृद्धावस्था ।

गौतम ! यह बुद्धि भली तेरी, हो गया दूर मेरा सशय।
सशय-अतीत हे श्रुतसागर ! हो नमस्कार हे मुनि निर्भय ।।८५।।

सशय-विहीन होकर केशी, अतिघोर पराक्रम के धारी।
गौतम को वन्दन कर मन से, शिर झुकादिया महिमाधारी ।।८६।।

पच महाव्रत रूप धर्म को, भाव सहित स्वीकार किया।
पार्श्व तीर्थ से वीर प्रभु के, सुखद तीर्थ मे स्थान लिया ।।८७।।

केशी गौतम का उस पुर मे, मगलमय सगत नित्य रहा।
आत्मार्थ और उन्नतिकारी, श्रुतशील सुवर्धक वना रहा ।।८८।।

सन्तुष्ट हुई परिपद् सारी, सन्मार्ग सभी आरूढ हुये।
स्तुति पा केशी गौतम स्वामी, होवे प्रसन्न प्रभु दोनो ये ।।८९।।

●

है दृष्टि वन्द करने वाले, अति निविड तिमिर मे जीव पडे ।
उन सारे जीवो को जग मे, उद्योत वताओ कौन करे ॥७५॥

जो सकल लोक उद्योत करे, निर्मल दिनकर है हुआ उदित ।
वही करेगा सव जग के, प्राणीगण का मन आलोकित ॥७६॥

है भानु यहाँ किसको कहते, केशी ने पूछा गौतम को ।
केशी के ऐसा कहने पर, गौतम यो वचन कहे उनको ॥७७॥

हो गया क्षीण भव भय जिसका, सर्वज्ञ वही है जिन भास्कर ।
वह सभी लोक के प्राणी का, अन्तर्मन कर देगा भास्वर ॥७८॥

हे गौतम ! वुद्धि भली तेरी, हो गया दूर मेरा सशय ।
है एक दूसरा भी सशय, उसको वतला दो हो निर्भय ॥७९॥

तन मन के दुखो से पीडित, इन जग जीवो के लिए यहाँ ।
क्षेमकर शिव और निरावाध, तुम मान रहे हो स्थान कहाँ ॥८०॥

है ध्रुवस्थान जग के ऊपर, जिसको पाना है वडा कठिन ।
है नही वेदना और व्याधि, जरता[1] का सशय तथा मरण ॥८१॥

केशी ने गौतम को पूछा, वह स्थान कौनसा यहाँ कहा ।
केशी के ऐसा कहने पर, गौतम ने उत्तर निम्न कहा ॥८२॥

निर्वाण अवाधित और सिद्धि, लोकाग्र स्थान भी इसे कहा ।
शिव क्षेम उपद्रव रहित स्थान, जिस पर जाते है श्रमण महा ॥८३॥

वह लोक शिखर पर स्थान रहा, शाश्वत पद पाना है दुर्लभ ।
भव भ्रमण अन्त करने वाले, करते न शोक पाकर मुनिजन ॥८४॥

---

१ वृद्धावस्था ।

गौतम ! यह बुद्धि भली तेरी, हो गया दूर मेरा सशय।
सशय-अतीत हे श्रुतसागर ! हो नमस्कार हे मुनि निर्भय ॥८५॥

सशय-विहीन होकर केशी, अतिघोर पराक्रम के धारी।
गौतम को वन्दन कर मन से, शिर झुकादिया महिमाधारी ॥८६॥

पच महाव्रत रूप धर्म को, भाव सहित स्वीकार किया।
पार्श्व तीर्थ से वीर प्रभु के, सुखद तीर्थ मे स्थान लिया ॥८७॥

केशी गौतम का उस पुर मे, मगलमय सगत नित्य रहा।
आत्मार्थ और उन्नतिकारी, श्रुतशील सुवर्धक वना रहा ॥८८॥

सन्तुष्ट हुई परिषद् सारी, सन्मार्ग सभी आरूढ हुये।
स्तुति पा केशी गौतम स्वामी, होवे प्रसन्न प्रभु दोनो ये ॥८९॥

२४ : वचनमाता

समिति गुप्ति दो भेदो से, है आठ यहाँ प्रवचन माता।
है पाँच समिति ओर तीन गुप्ति, सूत्रो मे भेद कहा जाता ॥१॥

ईर्या, भापा, और एपणा, आदान और उच्चार कही।
समिति और मन, वचन, काय की, गुप्ति आठवी सुखद सही ॥२॥

सक्षिप्त रूप से आठ समिति, ये वीर प्रभु ने वतलाई।
यह द्वादशाग वाणी जिन भापित, समिति गुप्ति मे समा गई ॥३॥

आलम्बन काल मार्ग यतना का, मुनि ईर्या मे ध्यान धरे।
इन चार कारणो से विशुद्ध, सयति ईर्या मे गमन करे ॥४॥

चारित्र, ज्ञान, दर्शन तीनो, ईर्या का आलम्बन मानो।
है दिवस काल मे मार्ग कहा, उत्पथ तजकर सत्पथ जानो ॥५॥

है द्रव्य क्षेत्र ओर काल भाव से, चार प्रकार कही यतना।
कह रहा अभी मै भेदो को, दे ध्यान योग उनको सुनना ॥६॥

आँखो से जीव द्रव्य देखे, और क्षेत्र धनुप परिमित जानो।
चलने तक देखे काल यही, है भाव एक मनसे मानो ॥७॥

इन्द्रिय गण के शब्दादि विपय, स्वाध्याय पचविध कर वर्जन।
ईर्या मे तन्मय हो मुनिजन, यतना से जग मे करे भ्रमण ॥८॥

भापा समिति का भाव सुनो, हे क्रोध मान माया मन मे ।
फिर लोभ हास्य भय मुखर वचन, विकथा प्रमाद है जन-जन मे ।।६।।

सयमी आठ इन स्थानो का, परिवर्जन निज मन से करते ।
यथा समय निर्दोप और, परिमित भापा मुख से कहते ।।१०।।

आहार उपधि और शय्या मे, मुनि दोप वचाना चित्तधरे ।
परिभोग ग्रहण और गवेपणा मे, विविध शुद्धि का ध्यान करे ।।११।।

उद्गम उत्पादन गवेपणा मे, दूजी मे ग्रहणा दोप हरे ।
परिभोग चार दूपण टाले, सयमी यत्न से अशन करे ।।१२।।

सामान्य और कारण से ले, यो द्विविध भाण्ड मुनिजन धरते ।
उनके लेने वा रखने मे, उपयोग सहित यह विधि करते ।।१३।।

नेत्रो से देखे और करे, परिमार्जन मुनिवर यतना से ।
नित्य समिति से उपकरणो को, लेते धरते जो मन से ।।१४।।

उच्चार प्रश्रवण श्लेष्म और, सिघान स्वेद जल सम्वन्धित ।
आहार उपधि तन और त्याज्य का, करे विसर्जन यत्न सहित ।।१५।।

अनापात आलोकरहित, आपात-रहित सलोक जहाँ ।
असलोक आपात और, होता सलोकापात वहाँ ।।१६।।

अनापात सलोक रहित, स्थण्डिल न वहाँ पर-पीडक हो ।
सम, पोल रहित जो पहले से, निर्जीव भाव मे परिणत हो ।।१७।।

विस्तीर्ण चार अगुल गहरी, निर्जीव भूमि घर निकट नही ।
विल और प्राण वीजादि रहित, मलत्यागयोग्य यह भूमि कही ।।१८।।

ये पाँच समिति के भेद वताते, समासत मुनिवर्य यहाँ ।
अव तीन गुप्तियाँ वतलाऊँ, क्रमश सुन लेना उन्हे यहाँ ।।१९।।

सत्य तथा दूजी असत्य, सत्यामृप वैसे ही जानो।
चौथी असत्यामृप कहते, ये मनोगुप्तियाँ पहचानो ॥२०॥

समारभ सरभ कहा, आरम्भ तीसरा भेद यहाँ।
मन की प्रवृत्ति का रोध करे, यतना करने से यमी कहा ॥२१॥

सत्य और मिथ्याभापा, तीजा मिश्रित है वतलाया।
व्यवहार चतुर्थी भापा है, यो वचन गुप्ति को समझाया ॥२२॥

समारम्भ सरम्भ तथा, आरम्भ भेद तीजा जानो।
इनमे वाणी के वर्तन को, रोके वह सयत पहचानो ॥२३॥

खडा रहे बैठे लेटे, सकोच प्रसारण कर्म करे।
उल्लघन वा परिलघन, इन्द्रियगण का परयोग करे ॥२४॥

समारम्भ मरम्भ तथा, आरम्भ तीसरा वतलाया।
इनमे लगती निज काया को, गोपन ही गुप्ति कहलाया ॥२५॥

ये समिति प्रवृत्ति रूप कही, चारित्र धर्म मे जिनवर ने।
अशुभ कर्म से वृत्ति रोकना, गुप्ति लगायी मुनिवर ने ॥२६॥

करता जो प्रवचन माता का, सम्यग्विधियुत् आचरणश्रमण।
वह शीघ्र सफल जग वन्धन मे, होता विमुक्त ज्ञानी तप धन ॥२७॥

२५ : यज्ञीय

जयघोष नाम का एक विप्र, था ब्राह्मण कुल मे उत्पन्न हुआ ।
महायशस्वी व्रत यज्ञो मे, सदा चित्त अनुरक्त रहा ॥१॥

इन्द्रियगण का निग्रहकर्ता, और महाश्रमण सत्पथगामी ।
ग्रामानुग्राम विचरण करते, वाराणसि आये शुभकामी ॥२॥

वाराणसि नगरी वाहर था, उद्यान मनोरम प्रियकारी ।
निर्जीव स्थान सस्तारक पा, मुनि वसे वहाँ पर उपकारी ॥३॥

उसी समय उस नगरी मे, था ब्राह्मण विद्या का ज्ञाता ।
वह विजयघोप सज्ञा वाला, वेदज्ञ यज्ञ विधि करवाता ॥४॥

फिर उस पुर मे जयघोप श्रमण, उपवास मास के पारण मे ।
भिक्षा लेने को आ पहुँचे, वे विजयघोप के आँगन मे ॥५॥

भिक्षा हित आए मुनिवर को, याजक ने दी उल्टी शिक्षा ।
मुनि करो याचना और कही, मै तुम्हे नही दूँगा भिक्षा ॥६॥

जो विप्र वेद के ज्ञाता है, यज्ञार्थी सस्कृति से द्विज है ।
ज्योतिषाग के विज्ञ और जो, धर्मशास्त्र के पारग है ॥७॥

निज पर के उद्धार कार्य मे, जो विपदा मोचन मे सक्षम है ।
भिक्षो ! उनके ही हित देना, षड्‌रसयुत् भोजन उत्तम है ॥८॥

याजक से ऐसा पा निषेध, वह महाश्रमण उस काल वहा ।
ना रुष्ट और न तुष्ट हुआ, आत्मार्थ गवेषण ध्यान रहा ।।९।।

न अन्न हेतु या पान हेतु, न जीवन जीने हेतु कहा ।
उनके भव वन्धन मोक्ष हेतु, यो धर्म हेतु शुभवचन कहा ।।१०।।

वेदो का मुख ना जान रहे, और न यज्ञो के मुख को ।
नक्षत्रो मे प्रमुख कौन है, और न धर्मो के मुख को ।।११।।

निज पर के उद्धारक जो है, उनका भी तुमको ज्ञान नही ।
यदि इनका उत्तर तुझे ज्ञात हो, वतलाओ तो हमे सही ।।१२।।

प्रश्नो के उत्तर देने मे, असमर्थ विप्र वोला मुनि से ।
अजलि जोडे पृच्छा करता, हो सग उपस्थित परिजन के ।।१३।।

तुम कहो वेद का मुख क्या है, यज्ञो का जो मुख तुम वोलो ।
नक्षत्रो का मुख्य कौन, धर्मो का मुख भी तुम वोलो ।।१४।।

उद्धार समर्थक जो जन है, अपने और पराये का ।
हे साधु करो तुम समाधान, मेरे इन सारे सशय का ।।१५।।

अग्निहोत्र मुख वेदो का है, यज्ञार्थी मुख यज्ञो का ।
नक्षत्र गणो का शशि मुख है, काश्यप मुख है सव धर्मो का ।।१६।।

जैसे कर-वद्ध ग्रहादि सभी, शशि के आगे मे है रहते ।
वन्दना नमन करते मनहर, वैसे सव जिनवर को करते ।।१७।।

अज्ञान यज्ञवादी ये है, ब्राह्मण विद्या के वैभव से ।
स्वाध्याय तपस्या से सवृत, भस्मावृत पावक के जैसे ।।१८।।

कहलाते ब्राह्मण जग मे, जो अग्नि तुल्य पूजित सव मे ।
कुशल पुरुष मे सदा मान्य, ब्राह्मण कहलाते वे जग मे ।।१९।।

है प्रीति नही मन आने की, करता न शोक मन मे जाते ।
जो आर्य वचन मे रमण करे, हम उसको ब्राह्मण कह गाते ॥२०॥

जैसे शुद्ध तपा सोना, निर्मल पालिश से चमकाते ।
वैसे भय राग दोप वर्जित, जन को हम ब्राह्मण कह गाते ॥
जिसका है रक्त मास अपचित, जो तपी दान्त और कृश तन है ।
सुव्रत या निर्वाण प्राप्त को, हम सव कहते ब्राह्मण है ॥२१॥

चेष्टा से त्रस को जो जाने, स्थावर को श्रुत से पहचाने ।
करते न त्रिविध हिसा जग मे, उसको हम ब्राह्मण कर माने ॥२२॥

जो क्रोध हास भय और लोभ से, झूठ वचन मुख ना कहते ।
उस सत्य वचन के वक्ता को, हम सव जग मे ब्राह्मण कहते ॥२३॥

हो द्रव्य सचित्त अथवा अचित्त, थोडा हो या वह अधिक कही ।
जो दिये विना ना ग्रहण करे, कहते उसको हम विप्र सही ॥२४॥

जो दिव्य मनुज और पशु जग का, मैथुन सेवन ना करते है ।
उस त्रिविध योग त्यागी जन को, हम जग मे ब्राह्मण कहते है ॥२५॥

जैसे जल मे सभूत कमल, ज्यो जल-मल लिप्त नही रहते ।
ऐसे कामो मे जो अलिप्त, हम सव उसको ब्राह्मण कहते ॥२६॥

रसविजयी और मुधाजीवी, छोडा जिसने घर काचन है ।
घरदारी से जो अनासक्त, कहते उसको हम ब्राह्मण है ॥
ज्ञाति और वान्धव जन के, सयोग पूर्व का जो तजते ।
आसक्त न होता जो इनमे, उसको ब्राह्मण है हम कहते ॥२७॥

पशु वध विधि कारक सभी वेद, और पाप कर्म से यज्ञ किया ।
ना त्राण करे दुष्कर्मी का, है कर्म सवल जग जान लिया ॥२८॥

शिर-मुण्डन से हो न श्रमण, ओकार जपे ना द्विज होते ।
वनवास मात्र से हो न मुनि, कुश वल्कल से न तपी होते ॥२९॥

समता से होता श्रमण सही, है ब्रह्मचर्य से सद्ब्राह्मण
ज्ञानाराधन से मुनि होता, तापस होता कर तप साधन।

कर्मो से ब्राह्मण होता है, कर्मो से क्षत्रिय बन जाता।
है वैश्य कर्म से ही होते, और शूद्र कर्म से ही होता।

जिनवर ने प्रकट किये इनको, जिनसे स्नातक हो जाते है।
जो सब कर्मो से विनिर्मुक्त, हम उसको ब्राह्मण कहते है॥

यो सद्गुण सयुत् जो होते, वे द्विज उत्तम कहलाते है।
निज पर के उद्धार करण मे, वे समर्थ जग होते है॥

ऐसे सशय के हटने पर, वह विजयघोप नामक ब्राह्मण।
सब भाँति समझकर ग्रहण किया, जयघोष श्रमण का सद्भाषण॥

अब विजय घोप सन्तुष्ट हुआ, और हाथ जोड बोला उनको।
जैसा स्वरूप है माहन का, समझाया अच्छा है हमको॥३

तुम ही सद्यज्ञो के कर्ता, वेदज्ञ विचक्षण भी हो तुम।
तुम ज्योतिपाग के ज्ञाता हो, धर्मो के पारग[1] भी हो तुम॥३

निज पर के उद्धारकरण मे, तुम समर्थ और अटल रहे।
अब करो अनुग्रह भिक्षु श्रेष्ठ, भिक्षा इच्छा भर ग्रहण करे॥३७

मुझको न कार्य है भिक्षा से, द्विज! शीघ्र प्रव्रज्या धारणकर।
इस भयावर्त भवसागर मे, मत और लगाना तुम चक्कर॥३८॥

भोगो मे बन्धन होता है, होता न लिप्त जो भोग रहित।
भोगी ससार भ्रमण करता, होता विमुक्त जो राग रहित॥३९॥

सूखे व गीले मिट्टी के, दो गोले फेके सग गए।
दोनो ही गिरे भीत ऊपर, जा गीले उन पर चिपक गए॥४०॥

---

१ धर्म का रहस्य समझने वाले।

यो काम लालची जो जन है, वे दुर्मति विपयो मे लगते।
चिपके न शुष्क गोलक जैसे, जो राग रहित जग जन होते ॥४१॥

इस प्रकार वह विजयघोप, जयघोप श्रमण के पास वहाँ।
उस श्रेष्ठ धर्म को सुनकर के, वन गया शीघ्र अनगार यहाँ ॥४२॥

सचित कर्मो को क्षय करके, वे सयम और तपस्या से।
विजयघोप जयघोप भ्रात, पद सिद्धि मिलाये भव जल से ॥४३॥

❁

२६ : समाचारी

मै समाचारी वतलाऊँ, जो सव दु खो को देती टार ।
निर्ग्रन्थ श्रमण जिनका पालन, कर भवसागर को करते पार ॥१॥

है आवस्सिया पहली गायी, दूजी निसीहिया वतलायी ।
है आपृच्छना तीजी कहते, प्रतिपृच्छा चौथी सुखदायी ॥२॥

छन्दना नाम पचम का है, छट्ठी मर्यादा इच्छा है ।
सप्तम को मिथ्याकार कहा, तहकार आठवॉ अच्छा है ॥३॥

उत्थान समाचारी नवमी, दशवी उपसम्पद् समझाई ।
प्रभु ने दशाग की मर्यादा, मुनिजन के हित ये वतलाई ॥४॥

आवस्सिया जाते कहना, फिर आते निसीहिया कहना ।
आपृच्छा अपने कार्य समय, पर कार्य पुन पृच्छा करना ॥५॥

छन्दना प्राप्त द्रव्यो से हो, और स्मारण मे इच्छाकार कहे ।
निन्दा मे मिथ्याकार कहा, ओर श्रवण समय तहकार कहे ॥६॥

उत्थान विनय गुरु पूजा मे, उपसम्पद् ज्ञानाद्यर्थ रहे ।
इस तरह वोल मर्यादा के दश, मुनि जन के हित गए कहे ॥७॥

प्रथम पहर के पूर्व भाग मे, सूर्य गगन मे उठ जावे ।
प्रतिलेखन कर भाण्डादिक, फिर गुरुजन वन्दन कर आवे ॥८॥

फिर हाथ जोड पूछे गुरु मे, अव क्या करना गुरुवर हमको ।
सेवा या स्वाध्याय किसी मे, करे नियोजन गुरु मुझको ॥९॥

सेवा करने की आज्ञा हो, अग्लान भाव से वही करे।
सकल दुख हरने वाले, हो ग्लानिरहित स्वाध्याय करे ॥१०॥

कुशल भिक्षु दिनचर्या मे, चार भाग दिन का करके।
उत्तरगुण विधिवत् साध चले, चारो विभाग मे मन धरके ॥११॥

प्रथम पहर स्वाध्याय करे, और ध्यान दूसरे मे धरले।
पहर तीसरी भिक्षा हित, चौथी मे फिर स्वाध्याय करे ॥१२॥

आषाढ मास मे दो पद की, और पौष चार पद मे होती।
चैत्र और आश्विन त्रिपदी, पौरुषी काल छाया होती ॥१३॥

अगुल एक सात वासर[1] मे, तथा पक्ष मे दो अगुल।
होती है छाया हानि-वृद्धि, प्रत्येक मास से चतुरागुल ॥१४॥

आषाढ भाद्रपद कार्तिक और, हेमन्त होलिका माधव[2] मे।
होती तिथियाँ क्षय एक-एक, षण्मास पक्ष अधेरे मे ॥१५॥

ज्येष्ठ आषाढ और श्रावण छ, भादव आश्विन कार्तिक आठ।
मृगशिर पौष माघ मे दश, वैशाख चैत्र फाल्गुन मे आठ ॥
इन तथाकथित त्रिक मासो मे, पद छाया अगुल बतलाया।
मुनिजन प्रतिलेखन काल जान, वस्त्रादिक देख तज माया ॥१६॥

रजनी के भी चार भाग कर, प्राज्ञ श्रमण सत्कार्य करे।
चारो भागो मे कार्य भाग[3] कर, उत्तरगुण का ध्यान धरे ॥१७॥

हो प्रथम पहर स्वाध्याय हेतु, और द्वितीय प्रहर मे ध्यान धरे।
प्रहर तीसरे मे निद्रा, और चौथे मे स्वाध्याय करे ॥१८॥

जो पूर्ति करे नक्षत्र निशा, वह चतुर्भाग नभ मे आये।
उसके रजनीमुख आने पर, स्वाध्याय विरत मुनि हो जाये ॥१९॥

---

१ वासर=दिन। २ माधव=वैसाख। ३ भाग=वं

नभ के अन्तिम चतुर्भाग मे, नक्षत्र वही जब आ जाये।
वैरात्रिक भी काल जान, स्वाध्याय कार्य मे लग जाये ॥२०॥

दिन प्रथमप्रहर के प्रथमभाग मे, कर भाण्डो का प्रतिलेखन।
दु ख मोचक स्वाध्याय करे, कर प्रथम पूज्य गुरु को वन्दन ॥२१॥

पौन पौरुषी के बीते, गुरु के चरणो मे वन्दन कर।
प्रतिक्रमण विन किये काल का, भाजन का प्रतिलेखन मन धर ॥२२॥

मुँहपत्ती प्रतिलेखन कर, फिर गोच्छग का हो प्रतिलेखन।
अगुलि गृहीत गोच्छग वाला, वस्त्रो का करले प्रतिलेखन ॥२३॥

ऊर्ध्व सुथिर और त्वरारहित, पहले ही पट पर नजर करे।
फिर जीव हटा झटके पीछे, तीजे परिमार्जन चित्त धरे ॥२४॥

तन, या पट ना अधर झुलावे, मोडे अनुवन्ध न स्पर्श करे।
छह पूर्व और नौ खोटक कर, करतल ले प्राणी दूर करे ॥२५॥

छोडे आरभटा सम्मर्दा, तीसरी मौसली दोप कहा।
प्रस्फोटना और फिर विक्षिप्ता, वेदिका दोप है पष्ठ रहा ॥२६॥

प्रशिथिल प्रलम्व लोल एका-मर्शा अनेक सगले धूनना।
होता प्रमाण मे है प्रमाद, फिर करागुली गणना धरना ॥२७॥

अनतिरिक्त अन्यून तथा, विपरीत न पट का प्रतिलेखन।
इनमे प्रशस्त पहला विकल्प, और अप्रशस्त है सभी कथन ॥२८॥

प्रतिलेखन करता जो मिलकर, वार्ता या देशकथा करता।
प्रत्याख्यान कराता पर को, पाठ पढाता या पढता ॥२९॥

पृथ्वी जल एव तेज पवन, वनकाय और हे त्रसकायिक।
प्रतिलेखन मे यदि हो प्रमाद, वाधक होता वह पट्कायिक ॥
पृथ्वी जल पावक और पवन, वनकाय और है त्रसकायिक।
प्रतिलेखन मे उपयोग सहित, होता सवका यह आराधक ॥३०॥

पहर तीसरे मे मुनिजन, चल भक्तपान हित खोज करे।
छह कारण मे कोई कारण, पाकर भिक्षा का ध्यान धरे ॥३१॥

क्षुधा-शान्ति एव सेवा, ईर्याशोधन सयम - रक्षण।
जीवन रक्षा और धर्म जागरण, हेतु करे मुनि अन्नाशन ॥३२॥

धृतियुन् साधु और साध्वीजन, षट्कारण से ना अशन करे।
हो जिनसे सयम मे बाधा, उन स्थानो का त्याग करे ॥३३॥

उपसर्ग और आतकरोग, फिर ब्रह्मगुप्तिहित सहन करे।
प्राणि-दया और तपोहेतु, तनत्याग हेतु ना अशन करे ॥३४॥

सव भाण्ड और उपकरणो को, लेकर नयनो से देख धरे।
उत्कृष्ट अर्धयोजन सीमा, मुनि ग्राम नगर मे भ्रमण करे ॥३५॥

चौथा प्रहर प्राप्तकर मुनिजन, भाण्ड देखकर अलग धरे।
फिर सकल भाव के उद्योतक, शास्त्रो का मुनि स्वाध्याय करे ॥३६॥

फिर चतु पहर के शेप भाग मे, गुरु चरणो मे वन्दन कर।
शय्यास्थल देखे ध्यान लगा, स्वाध्याय काल का चिन्तन कर ॥३७॥

प्रस्रवण और उच्चार भूमि का, पुन करे मुनि प्रतिलेखन।
सव दु ख मुक्त करने वाला, फिर कायोत्सर्ग करे चिन्तन ॥३८॥

चारित्र ज्ञान और दर्शन मे, अतिचार लगा जो दिन भर मे।
उनका पुनरावर्तन ना हो, चिन्तन अनुक्रम धरले मन मे ॥३९॥

कायोत्सर्ग पूर्ण करके, फिर करे प्रेम से गुरुवन्दन।
अतिचार दैवसिक का पीछे, अनुक्रम से करले आलोचन ॥४०॥

दोप शुद्धिकर शल्य रहित हो, गुरु जन का करके वन्दन।
सव दु ख मुक्त करने वाला, फिर कायोत्सर्ग करे मुनिजन ॥४१॥

कायोत्सर्ग पारित करके, गुरुवर को करले फिर वन्दन।
स्तुति मगल नित्यकृत्य करके, फिर करे काल का प्रतिलेखन ।।४२।।

प्रथम प्रहर स्वाध्याय और, हो द्वितीय ध्यानका समयनियत।
प्रहर तीसरे मे निद्राले फिर, चौथे मे स्वाध्याय नियत ।।४३।।

प्रतिलेखन स्वाध्याय काल का, प्रहर चतुर्थी मे करते।
फिर शान्त चित्त स्वाध्याय करे, गृहि-जन को विन जागृत करते ।।४४।।

फिर पौन पौरुपी के वीते, गुरु के चरणो मे कर वन्दन।
करे काल का प्रतिक्रमण, और करे काल का प्रतिलेखन ।।४५।।

सव दुख मुक्त करने वाले, उत्सर्गकाल के आने पर।
सव दुख विमोचक हेतु पुन, उत्सर्ग करे हर्पित मुनिवर ।।४६।।

चारित्र, ज्ञान और दर्शन मे, अतिचार लगा जो जीवन मे।
अनुक्रम से उनका करे ध्यान, रजनी के दोषो का मन मे ।।४७।।

कायोत्सर्ग पारित करके, गुरु के चरणो मे कर वन्दन।
अतिचार रात्रि से सम्वन्धित, अनुक्रम से कर ले आलोचन ।।४८।।

कर दोपशुद्धि हो शल्यहीन, फिर गुरु चरणो मे वन्दन कर।
कायोत्सर्ग करे मुनिवर, सब दुख मुक्ति का सत्पथ धर ।।४९।।

क्या करूँ तपस्या मै धारण, उत्सर्ग समय यो ध्यान करे।
करके कायोत्सर्ग पूर्ण, फिर गुरु वन्दन का ध्यान धरे ।।५०।।

कायोत्मर्ग पारित करके, फिर साधु करे गुरु का वन्दन।
तप को सम्यक् धारण करके, फिर करे सिद्ध सस्तुतिगायन ।।५१।।

सक्षेप रूप मे कही यहाँ, मैने मुनि की समाचारी।
कर पालन इसका तिरे कई, दुस्तर भवसागर ससारी ।।५२।।

२७ : खलुंकीय

मुनि गर्ग स्थविर गणधर एव, शास्त्रो के पूर्ण विशारद थे।
वे गुणाकीर्ण गणिपद पाकर, करते समाधि को धारण थे ॥१॥

मार्ग चलाता जो वाहन, कान्तार[1] पार कर जाता है।
सयम योगो मे गति करके, ससार पार हो जाता है ॥२॥

जो दुष्ट बैल को जोड चले, सागडी क्लेश मन पाता है।
असमाधि चित्त वेदन करता, दडा उसका टुट जाता है ॥३॥

कुपित एक की पूँछ काटता, और वीधता तन वहुवार।
दुष्ट तोडता कील जुए की, उत्पथ जाता कर फुँकार ॥४॥

एक पार्श्व से गिर जाता, वा छलकर लेट बैठ जाता।
कूदता उछलता कोई शठ, तरुणी गौ पीछे भग जाता ॥५॥

कपटी मस्तक के वल गिरता, हो कुपित कोई पीछे जाता।
मृतवत् निश्चेष्ट वना गिरता, कोड तेज दौडने लग जाता ॥६॥

तोड रास छिन्नाल वृषभ, दुर्दान्त तोडता है युग को।
सो सो कर तजता वाहन वह, जाता है भग तज वाहन को ॥७॥

जैसे होते ये दुष्ट बैल, दु शिष्य समझलो वैसे ही।
दुर्वल धृतिवाले धर्म-यान, जोडे भग जाते ऐसे ही ॥८॥

---

१ अटवी। २ गाडीवान।

करे ऋद्धिगौरव कोई, रस-गौरव कोई मन धरता।
सातासुख का कोई मान करे, चिर काल क्रोधकर खुश होता ॥९॥

आलसी एक भिक्षा मे हो, अपमान-भीरु कोई स्तब्ध रहे।
हेतु और कोई कारण से, अनुशासित होकर मार्ग वहे ॥१०॥

अनुशासित अन्तर मे वोले, दुर्मेधा अतिशय दोप करे।
आचार्य वचन प्रतिकूल करे, दे युक्ति वचन का काट करे ॥११॥

नही जानती वह गृहिणी, ना कुछ भी वह हमको देगी।
जाये कोई वहाँ अन्य, वह निकल गयी वाहर होगी ॥१२॥

भेजे किसी कार्य पर तो, छल कर वोलें ना कार्य करे।
चहुँ ओर फिरे गुरु आज्ञा को, वेगार समझ मुख भृकुटि धरे ॥१३॥

दीक्षा शिक्षा दे पढा शास्त्र, दे भक्तपान से पुष्ट किये।
ज्यो हस पोत कर प्राप्त पख, दश दिशि जाते त्यो शिष्य गये ॥१४॥

सारथिसम सोचे गणि मन मे, खुल्लक[1] सग मिला मुझको।
इनसे मिलता क्या लाभ मुझे, होता है दुख अन्तर मन को ॥१५॥

ये मूर्ख शिष्य जैसे मेरे, हौ गलियो के रासभ वैसे।
गलि-गर्दभ शिष्यो को तजकर, पकडूँ तप का पथ दृढ मन से ॥१६॥

अन्तर वाहर मृदुता वाले, गम्भीर समाहित मन वाले।
पृथ्वी पर विचरे गर्ग श्रमण, निर्मल आचारी तप वाले ॥१७॥

---

१ दुष्ट अविनीत शिष्य।

२८ : मोक्ष-मार्ग-गति

मोक्ष मार्ग की सत्य गति, जिन-भापित भाई सुन लेना।
चार कारणो से सयुत, सद्ज्ञान दर्श लक्षण धरना ॥१॥

श्रद्धा ज्ञान चारित्र और, चौथा कारण है तप जानो।
यह मार्ग वताया जिनवर ने, निर्दोप ज्ञान उनका मानो ॥२॥

ज्ञान और श्रद्धा सयम, तप कारण चौथा वतलाया।
इस पथपर चलकर जीव सुगति, वर पाते जिनवर ने गाया ॥३॥

मार्ग चतुष्टय मे पहला है, ज्ञान पचविध वतलाया।
आभिनिवोधिक श्रुत और अवधि, मनपर्यव केवल मनभाया ॥४॥

सब द्रव्य और गुण पर्याये, ज्ञातव्य जगत मे तीन सही।
इन सवको जाने 'जिस गुण से, है ज्ञान पचविध पूर्ण वही ॥५॥

है द्रव्य गुणो का जो आश्रय, द्रव्याश्रित विध-विध गुण होते।
जो द्रव्य और गुण के आश्रित, पर्याय रूप वे कहलाते ॥६॥

धर्म-अधर्म, नभ, काल और, पुद्गल, चेतन को द्रव्य कहा।
वरदर्शी जिनवर वतलाते, पड्द्रव्य रूप ही लोक यहाँ ॥७॥

धर्म, अधर्म, आकाश द्रव्य, ये एक-एक ही वतलाये।
है जीव, काल, पुद्गल तीनो, ये द्रव्य अनन्त जग मे छाये ॥८॥

गतिलक्षण वाला धर्म कहा, स्थिति लक्षण अधर्म है वतलाया।
सव द्रव्यो का भाजन नभ है, अवकाशदान गुण कहलाया ॥९॥

वर्तना काल का लक्षण है, उपयोग जीव का है लक्षण।
सुख-दु ख ज्ञान-दर्शन गुण से, जीवस्वभाव का है रक्षण ॥१०॥

है दर्शन ज्ञान चारित्र तपस्या, और शक्ति उपयोग जहाँ।
चैतन्य गुणो का वास देख, लक्षण से मानो जीव यहाँ ॥११॥

शब्द तिमिर उद्योत-प्रभा, छाया आतप रस वर्ण तथा।
स्पर्श गन्ध ये पुद्गल के, लक्षण है जग मे कहे यथा ॥१२॥

एकत्व जुदाई या सख्या, आकार रूप है पुद्गल के।
मिलना वियुक्त होना जानो, लक्षण पुद्गल पर्यायो के ॥१३॥

जीव अजीव बन्ध आस्रव, और पुण्य पाप दो बतलाये।
और मोक्ष निर्जरा सँवर को, नव तथ्य रूप मे है गाये ॥१४॥

यथाभूत इन भावो का, सत्यार्थ कथन है जिनवर का।
अन्तर्मन से श्रद्धा करता, सम्यक्त्व मार्ग है शिवपद का ॥१५॥

निसर्ग वा उपदेशरुचि, आज्ञा - श्रुत - बीजरुचि वैसे।
अभिगम विस्तार क्रिया अष्टम, सक्षेप धर्मरुचि है ऐसे ॥१६॥

उपदेश विना जो ज्ञान करे, जड चेतन कर्म शुभाशुभ का।
निज मति से आस्रव सवर मे, हो भाव सहज सद्दर्शन का ॥१७॥

जो द्रव्यादिकजिनदृष्टचतुर्विध, भाव स्वय ही मान्य करे।
है सत्य वही प्रभु बतलाया, यो निसर्गमति मन भाव धरे ॥१८॥

जिनवर या छद्मस्थ किसी से, कथित भाव को जो माने।
उपदेशजन्य उस श्रद्धा को, उपदेशरुचि ज्ञानी जाने ॥१९॥

अज्ञान मोह और राग द्वेष, जिसका जग मे मिट जाता है।
रमता रुचि जो उस आज्ञा मे, वह आज्ञारुचि कहलाता है ॥२०॥

जो पढ़कर अग सूत्र अथवा, श्रुत अग बाह्य से ज्ञान करे।
सूत्रो से श्रद्धा करता वह, है सूत्ररुचि यह ज्ञात करे ॥२१॥

जो एक सूत्र पद से नाना, वचनो मे सम्यक् भाव धरे।
जल मे तैल बिन्दु सम वह बीजरुचि यह नाम धरे ॥२२॥

अर्थरूप जिसने श्रुत को देखा वह अभिगम रुचिवाला।
अग इग्यारह और प्रकीर्णक दृष्टिवाद की मतिवाला ॥२३॥

द्रव्यो के सब भावो को जो सकल प्रमाणो से जाने।
सम्पूर्ण नयो से ज्ञान करे, विस्ताररुचि वह मुनि माने ॥२४॥

दर्शन ज्ञान चारित्र विनय तप, समिति गुप्ति जो मन धरता।
जो चरण भाव मे रुचि रखता, है वही क्रिया रुचि कहलाता ॥२५॥

निष्णात न जो जिन शासन मे, परमत का जिसको ज्ञान नही।
मन मे कुदृष्टि ने घर न किया, सक्षिप्तरुचि है जान वही ॥२६॥

जो अस्तिकाय का धर्म और, श्रुत चरण धर्म का ज्ञान करे।
जिन कथित भाव पर हो श्रद्धा, वह धर्मरुचि बन जग विहरे ॥२७॥

परमार्थ भाव का परिचय हो, परमार्थ विज्ञ की भक्ति करे।
सम्यक्त्व भ्रष्ट वा मिथ्या मत, वर्जन कर श्रद्धा मे विचरे ॥२८॥

सम्यक्त्व विना चारित्र नही, चारित्र विकल्पित दर्शन मे।
सम्यक्त्व और चारित्र सग, अथवा सम्यक्त्व पूर्व पद मे ॥२९॥

अदर्शनी को ज्ञान नही, और ज्ञान विना गुण चरण नही।
निर्गुण को मिलती मुक्ति नही, और विना मोक्ष की शान्ति नही ॥३०॥

शका काक्षा विचिकित्सा तज, एव अमूढदृष्टि वाला।
उपबृहण और स्थिरीकरण, वात्सल्य प्रभावन मन वाला ॥३१॥

चारित्र प्रथम है सामायिक, दूजा छेदोपस्थापन है।
परिहार विशुद्ध है तपसाधन, चौथा कपाय अतिशय लघु है ॥३२॥

यथाख्यात निर्मोह भाव, छद्मस्थ तथा जिनको होता।
करता सचित है कर्मरिक्त, चारित्र वही है कहलाता ॥३३॥

अन्तर वाह्य भेद दो तप के, वीर प्रभु ने वतलाये।
है छ प्रकार का वाह्य और, आन्तर तप भी पड्विध गाये ॥३४॥

है ज्ञान तत्व को जतलाता, दर्शन से श्रद्धा पाता है।
चारित्र कर्म का रोध करे, तप से सचित क्षय होता है ॥३५॥

मयम से आते कर्म रोक, सचित तप से क्षय करते है।
सकल दुख क्षय करने को, ऋषिवर वलवीर्य लगाते है ॥३६॥

●

२६ : सम्यक्त्व पराक्रम

(अ)

उस प्रभु ने कहा, सुना मैंने, सम्यक्त्व पराक्रम का सुविचार।
काश्यप गोत्री प्रभु महावीर, आयुष्मन् ! जगती के आधार ॥
जिस पर सम्यक् श्रद्धा-प्रतीति, कर विषय स्पर्श और रुचि करके।
स्मृति मे रखकर सब स्पर्शितकर, आचरित कर्म कीर्तन करके ॥
गुरु निकट शुद्ध उच्चारण कर, अर्थो का सही बोध पाकर।
जैसी अर्हत् की है आज्ञा, वैसा उसका अनुपालन कर ॥
होते है सिद्ध बहुत प्राणी, और बुद्ध मुक्त भी होते है।
करते है अन्त दुःख सारे, और परम शान्त वे होते है ॥

(आ)

उसका यह अर्थ कहा ऐसे, संवेगादिक का फल क्या है ?
है बोल तहत्तर पृच्छा के, चिन्तन से अति रस आता है ॥
संवेग और निर्वेद धर्म, श्रद्धा गुरु साधर्मिक सेवा।
आलोचन निन्दा वा गर्हा, सामायिक मनका है मेवा ॥
चौवीस जिनो की स्तुति वन्दन, प्रतिक्रमण काय का उत्सर्जन।
प्रत्याख्यान स्तव स्तुति मंगल, और काल का प्रतिलेखन ॥
प्रायश्चित्त क्षमाराधन, स्वाध्याय वाचना, प्रतिपृच्छन।
परिवर्तन एवं अनुप्रेक्षा, और धर्मकथा श्रुत-आराधन ॥
एकाग्रचित्त का संस्थापन, संयम तप और व्यवदान कहा।
सुख साथ और उन्मुक्त भाव, शय्या-आसन जनरहित सदा।
विनिवर्तन और संभोग उपधि, एवं आहार का त्याग जहाँ ॥

कटु कषाय और योग त्याग, एव शरीर का त्याग ज
हो सहाय का त्याग और, भक्तो का भी होता वर्ज
सद्भाव त्याग प्रतिरूपतादि, एव हो वैयावृत्य ग्र
सव गुण से पूर्ण वीतरागी, और क्षान्ति मुक्ति मृदुता-ऋज्
हो भाव योग और करण सत्य, एव मानस की गोपन
वचन गुप्त और कायगुप्त, एव मनधारित हो सम
वचन - शरीर समाधारण, हो ज्ञान पूर्ण यह मानव
हो दर्शन चारित्र पूर्णता, एव श्रोत्रेन्द्रिय का नि
चक्षु - घ्राण - जिह्वा - इन्द्रिय, और स्पर्शेन्द्रिय का भी नि
क्रोध मान माया एव, लोभ भाव पर रहे वि
राग द्वेष मिथ्या दर्शन, इन सव पर होवे सदा वि
कर्म - शून्यता शैलेशी, की स्थिति से यह जीवन च
ये है द्वार तिहत्तर इसके, कर पालन जग जन च

(इ)

पाकर सवेग भदन्त ! कहे, क्या जीव यहाँ पर पाता है
यह जीव अनुत्तर धर्मरुचि, सवेग भाव से पाता है।
जिससे करता है प्राप्त शीघ्र, सवेग अधिक वह जीवन मे
होता है माया मान लोभ, और तीव्र क्रोध भी क्षय क्षणमे
सचय न करे नव कर्मो का, जग मे कषाय-क्षय होने से
मिथ्यात्व विशोधन से करता, दर्शन आराधन मति वल से
दर्शन विशोधि के होने से, उस भव मे कोई सिद्ध होते
यदि कर्म शेष हो तो भी ना, भवतीजे का लघन करते

भन्ते ! निर्वेद भाव पाकर, यह जीव यहाँ क्या पाता है
वह ग्लानि देव नर तिर्यञ्चो के, काम भोग मे पाता है
इससे जग के सव विषयो से, वह नर विरक्त हो जाता है
जिससे वहुविध आरम्भो का, वह परित्याग कर जाता है
आरम्भ त्याग करने वाला, भव पथ का छेदन है करता
जिससे वह सहज सुलभता से, शिव पथ मे वढता है जाता

धार्मिक श्रद्धा के होने से, भन्ते ! क्या जीव यहाँ पाता।
साता-सुख मे रति वाला नर, मन मे विरक्ति है पा लेता ॥
देता वह त्याग गृहस्थी को, और वन जाता अनगार यहाँ।
सव छेदन-भेदन छोड छाड, करता सेवन तप कार्य यहाँ ॥
सयोग वियोगादिक जितने है, शारीरिक और मानस दुःख।
करता उनका विच्छेद और, पाता निर्वाध जगत मे सुख ॥३॥

गुरु साधर्मिक सेवा से, यह जीव कहो क्या पाता है ?
साधर्मिक सेवा करके वह, शुभ विनय धर्म को पाता है ॥
विनयशील परिवाद और, अविनय गुरु जन का ना करता।
इसलिए नैरयिक नर तिर्यक्, सुर-दुर्गति का वारण करता ॥
श्लाघा और गुण का प्रकाश, वहुमान और भक्ति द्वारा।
सम्वन्ध जोडता है अपना, मानव और देव सुगति द्वारा ॥
करता प्रशस्त पथ सिद्धि सुगति, और विनय मूल शुभ कामो को।
करता है सिद्ध विनय पथ पर, लाता है आगे परजन को ॥४॥

गुरु सन्मुख भूल निवेदन कर, भन्ते ! क्या प्राणी पाता है ?
और आलोचन के विना जीव, जग मे क्या हानि उठाता है ॥
इससे अनन्त भव के वर्द्धक, और मोक्षमार्ग वाधाकारी।
मिथ्यादर्शनरूप शल्य, माया-निदान जो दुःखकारी ॥
उनको निकालकर दूर करे, ऋजुभाव जगत मे पाता है।
और प्राप्त हुए ऋजुभाव व्यक्ति, माया-विहीन हो जाता है ॥
इसलिए नपुसक नारी का, वह नही वेद वन्धन करता।
यदि पहले से हो वँधे हुए, तो निश्चय उनका क्षय करता ॥५॥

भन्ते ! निन्दा अपनी करके, प्राणी क्या जग मे है पाता ?
अपनी निन्दा करके प्राणी, अनुताप हृदय मे कर पाता ॥
होकर विरक्त उसके द्वारा, गुण श्रेणी धारण वह करता।
गुण-श्रेणि करण गुण गण की कर, धारण मुनिव्रत वह कर लेता ॥
अनगार मार्ग पर चलकर वह, निज मोह कर्म को क्षय करता।
मोह क्षीण हो जाने से फिर, परम शान्ति सुख वह पाता ॥६॥

गुरु के समक्ष कर भूल प्रकट, भन्ते ! क्या प्राणी पाता है।
गर्हा से प्राणी अपुरस्कार, का भाव जगत मे पाता है ॥
अपुरस्कार से अप्रशस्त, कर्मों से पीछा फिर जाता।
शुभ योग प्राप्त कर फिर प्राणी, मन मे प्रमोद को पा लेता ॥
वह प्रशस्त योगी गृह त्यागी, अन्तर मे ज्योति जगा लेता।
अनन्तघाति कर्मदलिक का, क्षपण त्वरित है कर देता ॥७॥

समभाव साधना से भन्ते !, यह जीव यहाँ क्या पाता है।
सामायिक मे असत् योग की, विरति जीव पा लेता है ॥८॥

अर्हत् की स्तवना करने से, भन्ते ! क्या जीव यहाँ पाता।
अर्हत् स्तवना करने वाला, दर्शन विशोधि को है पाता ॥९॥

भन्ते ! वन्दन से जीव कहो, इस जगती मे क्या पाता है।
वन्दन से नीच गोत्रदायक, कर्मों को क्षीण बनाता है ॥
कुल आदि उच्च देने वाले, कर्मों का अर्जन करता है।
जिससे कुल गौरव हो न क्षीण, उन सब का वर्जन करता है ॥
सौभाग्य अखण्डित आज्ञा फल, दाक्षिण्य भाव वह पाता है।
जिसको पाकर अत्यन्त हर्ष से, मन उसका भर जाता है ॥१०॥

भन्ते ! कर प्राणी प्रतिक्रमण, क्या जगती मे है पाता।
इसके द्वारा व्रत छेदो को, अनायास है ढँक देता ॥
व्रत छिद्रो को भरने वाला, आस्रव को यहाँ रोक देता।
एव चारित्रिक धब्बो को, वह अपने आप मिटा देता ॥
आठो ही प्रवचन माता मे, अति सावधान वह रहता है।
सयम रत समाधिस्थ सम्यक्, होकर विहार कर जाता है ॥११॥

कायोत्सर्ग करके प्राणी, क्या है इस भूतल मे पाता।
वर्तमान और भूतकाल का, पाप विशोधन है करता ॥
जैसे तज भार भारवाही, अति स्वस्थ हृदय हो जाता है।
वैसे प्रशस्त ध्यान रत हो, सुख से वह विचरण करता है ॥१२॥

भन्ते ! प्रत्याख्यान भाव मे, क्या जग जीव प्राप्त करता ।
इससे वह आस्रव द्वारो का, है सहज निरोध सदा करता ॥१३॥

भन्ते ! स्तव सस्तुति मगल से, यह जीव यहाँ क्या पाता है ।
इससे सद्दर्शन ज्ञान चरित, का वोधि-लाभ वह करता है ॥
रत्नत्रय के वोधिलाभ से, हो सम्पन्न विवेकी नर ।
अन्त क्रिया करके आराधन, या वैमानिक होते सुर ॥१४॥

भन्ते ! कालिक प्रतिलेखन से, यह जीव यहाँ क्या है पाता ?
वह ज्ञानावरण कर्म को इससे, क्षीण जगत् मे कर जाता ॥१५॥

भन्ते ! कर प्रायश्चित्त जीव, क्या इस जगती मे है पाता ?
कर प्रायश्चित्त से पाप शुद्धि, वह निरतिचार है हो जाता ॥
कर सम्यक् प्रायश्चित्त मनुज, सम्यक्त्व ज्ञान निर्मल करता ।
आचार और उसके फल का, है सम्यक् आराधन करता ॥१६॥

भन्ते ! क्षमादान करके, यह जीव जगत् मे क्या पाता ?
है क्षमादान से मानस की, अतिशय प्रसन्नता वह पाता ॥
मानस प्रसन्नता को पाकर, सब प्राण भूत और जीवो के ।
सत्त्वो के साथ करे मैत्री, जिससे विशुद्ध निर्भय होते ॥१७॥

भन्ते ! कर स्वाध्याय जीव यह, क्या इस जग मे फल पाता ?
इससे ज्ञानावरण कर्म को, पूर्ण क्षीण है कर लेता ॥१८॥

सूत्र वाचना से भन्ते, प्राणी क्या जग मे पाता है ?
अज्ञान कर्म को हल्का कर, श्रुत-आशातन से वचता है ॥
अनाशातना वर्तमान, कर तीर्थधर्म का अवलम्बन ।
जिन शासन की दीप्ति बढाने, वाचन मे होता तन्मन ॥१९॥

प्रति प्रश्नो के करने से, भन्ते ! क्या प्राणी पाता है ?
करके सूत्रो की प्रतिपृच्छा, सूत्रार्थ शुद्ध कर पाता है ॥
पृच्छा और प्रतिपृच्छा से, सशय को दूर हटाता है ।
काक्षा मोहनीय कर्मो का, फिर विनाश कर पाता है ॥२०॥

सूत्रो के पुनरावर्तन से, भन्ते ! क्या प्राणी पाता है ?
परावर्तना से प्राणी, अक्षर सयोग मिलाता है ॥
परिपक्व पाठ करके फिर वह, विस्मृत की याद वढाता है।
व्यजन लब्धि कर प्राप्त ज्ञान, श्रुत को निर्मल कर पाता है ॥२१॥

भन्ते ! अनुप्रेक्षा से प्राणी, क्या इस जग मे फल पाता है ?
आयु कर्म को छोड प्रकृति, दृढ वन्धन शिथिल वनाता है ॥
सप्त कर्म की चिरकालिक, स्थिति अल्पकाल कर देता है।
उनके तीव्र सकल अनुभव को, मन्दरूप कर देता है ॥
वहु प्रदेश को कर देता है, अल्प प्रदेश मे परिवर्तन।
करता स्यात् नही भी करता, आयु कर्म का वह वन्धन ॥
असात वेदनीय का वहुश, उपचय वह यहाँ नही करता।
अनाद्यनन्त भव-वन का पथ, लघुकर वह शीघ्र पार करता ॥२२॥

भन्ते ! धर्मकथा से प्राणी, लाभ कहो क्या पाता है ?
करके कर्म निर्जरा एव, जिन शासन द्युति फैलाता है ॥
प्रवचन प्रभाव करने वाला, आगे इस जगती में चलता।
कल्याणक फल देने वाले, कर्मो का अर्जन है करता ॥२३॥

भन्ते ! श्रुत के आराधन से, प्राणी क्या जग मे है पाता ?
करता है अज्ञान नष्ट, सक्लेशो से वह वच जाता ॥२४॥

एकाग्र चित्त धारण कर भन्ते, प्राणी क्या जग मे पाता है ?
मन को एकाग्र वनाने से, मन का निरोध हो जाता है ॥२५॥

भन्ते ! सयम को धारण कर, प्राणी क्या जग मे पाता है ?
सयम आराधन से प्राणी, आस्रव निरोध कर जाता है ॥२६॥

भन्ते ! तप के आराधन मे, प्राणी क्या जग मे पाता है ?
तप मे कर सचित कर्मक्षीण, प्राणी विशुद्धि पा जाता है ॥२७॥

हे भदन्त ! व्यवदान भाव से, जीव यहा क्या पाता हे ?
व्यवदान भाव से अक्रियता, चाचल्य योग का जाता है ।।
अक्रिय-कर्म रहित होकर, फिर सिद्ध वुद्ध और मुक्त यहाँ ।
करता परिनिर्वाण प्राप्त, सव दु खो का कर अन्त यहाँ ।।२८।।

सुख की स्पृहा निवारण कर, भन्ते ! क्या प्राणी पाता हे ?
इससे विपयो के प्रति जग मे, वह अनौत्सुक्य पा जाता है ।।
विषयो की उत्सुकता तज के, अनुकम्पा जो नर रखता है ।
होकर प्रशान्त ओर शोकमुक्त, वह मोहनीय क्षय करता है ।।२६।।

भन्ते ! मन की अनासक्ति से, जीव यहाँ क्या पाता हे ?
अप्रतिवद्ध भाव धारण कर, वह असग हो जाता हे ।।
जीव अकेला सग रहित हो, एक चित्त हो जाता है ।
त्याग अहर्निश वाह्य भाव, निर्लेप भाव से चलता है ।।३०।।

कर सेवन एकान्त स्थान, भन्ते ! क्या प्राणी पाता है ?
निर्दोष स्थान से सयम का, सम्यक् रक्षण कर पाता है ।।
चारित्र सुरक्षक वह सदोप, आहारो का वर्जन करता ।
इससे चारित्र सुदृढ होता, एकान्त रमण वह कर पाता ।।
सदा शुद्ध मन से प्राणी, वह मोक्ष साधना मे लगकर ।
अष्टकर्म की गाँठो का, भजन करता दृढ वल को धर ।।३१।।

इन्द्रिय और मन को विषय दूर, कर भन्ते ! क्या प्राणी पाता ।
विनिवर्तन से वह नये पाप, ना करने को तत्पर होता ।।
कर दूर पुराने पापो को, वह शीघ्र नष्ट कर देता है ।
फिर चतुर्गतिक अन्तक भव-वन, का पार शीघ्र पा जाता है ।।३२।।

सभोग त्याग करने वाला, भन्ते ! क्या प्राणी पाता है ?
सहयोग त्याग से वह जग मे, अवलम्वन से हट जाता है ।।
मोक्षार्थ सभी उसके प्रयत्न, है पर अवलम्वन का त्यागी ।
मिलता भिक्षा मे जो कुछ भी, रहते मुनि उसके अनुरागी ।।

पर निमित्त से लब्ध द्रव्य मे, वे लेते है स्वाद नही।
करते ना उसकी स्पृहा प्रार्थना, चाह हृदय मे धरे नही॥
पर प्राप्त कभी भिक्षान्नो मे, आस्वाद न लेता व्रती वहाँ।
रखता न चाह उसकी मन मे, पर-लाभ स्पृहा ना करे यहाँ॥
प्रार्थना तथा अभिलापा भी, इस जग मे परकी ना करता।
पाकर वह दूजी सुख शय्या, निस्पृह मन से विचरण करता ॥३३॥

उपधि त्याग से क्या प्राणी, भन्ते ! इस जग मे है पाता ?
उपधिहीन स्वाध्याय ध्यान के, अन्तराय से वच जाता॥
उपधिरहित काक्षा से हटकर, होता जगती मे शोक मुक्त।
उसको अलाभ पाकर न कभी, सक्लेश हृदय को करता तप्त ॥३४॥

आहार त्याग करके प्राणी, भन्ते ! क्या जग मे है पाता ?
लम्वे जीवन की इच्छा को, इससे वह यहाँ काट देता॥
जीवन की इच्छा का जिसने, विच्छेद किया अन्तर्मन मे।
करता न कभी सक्लेश प्राप्त, आहार विना वह जीवन मे ॥३५॥

करके कपाय का त्याग जीव, भन्ते ! क्या जग मे है पाता ?
कपाय त्यागी जन जग मे, है वीतराग का पद पाता॥
वीतरागता को पाकर, वह हर्प शोक से वच जाता।
होकर अजातरिपु इस जग मे, सुख-दुख मे सम मन हो जाता ॥३६॥

भन्ते ! योग त्यागकर प्राणी, क्या इस जग मे है पाता ?
योग त्याग से आत्म अकपन, तुम मन मे कम्प नही करता॥
जीव अयोगी नव कर्मो का, कभी नही करता अर्जन।
कर देता है क्षीण पूर्व, अर्जित कर्मो को भी तत्क्षण ॥३७॥

भन्ते ! देह त्याग मे प्राणी, क्या इस जग मे है पाता ?
मुक्तात्मा के अतिशय गुण को, इसके द्वारा वह पा जाता॥
सिद्धो के अतिशय गुण पाकर, वह ऊर्ध्व गमन से भव तजकर।
परम सुखी हो जाता है, लोकाग्र स्थान शुभतम पाकर ॥३८॥

भन्ते ! जीव सहाय त्यागकर, इस जग मे क्या है पाता ?
इससे एकाकी भाव युक्त, प्राणी इस भव मे हो जाता ।।
एकाकी असहाय जीव, एकाग्र भाव साधन करता ।
करके अभ्यास सदा कोलाहल-रव से वह जन बच जाता ।।
वाचिक कलह कषाय मुक्त, तू-तू मैं-मै मे ना पडता ।
सयमबहुल, बहुल सँवर, और स्थिर समाधि मे हो जाता ।।३९।।

भन्ते ! भक्त त्याग सेवन कर, प्राणी क्या जग मे है पाता ?
इसमे अनेक शत जन्म मरण का, वह निरोध है कर जाता ।।४०।।

सद्भाव त्याग करके प्राणी, भन्ते ! क्या जग मे है पाता ?
इससे वह तन मन वाणी की, कुछ भी प्रवृत्ति ना कर पाता ।।
अनिवृत्ति को पा मुनिजन, केवलि-सस्थित चोकर्मो को ।
वेदनीय और आयु नाम, करता है क्षीण गोत्र पद को ।।
इसके पीछे वह सिद्ध बुद्ध, और मुक्त यहाँ हो जाता है ।
परिनिर्वाण प्राप्त होता, और अन्त सकल दु ख हरता है ।।४१।।

स्थविरकल्प सम रूप धार, भन्ते ! क्या जीव यहाँ पाता ?
प्रतिरूपत्व प्राप्तकर वह, हल्कापन को है पा जाता ।।
उपधि अल्पता से हल्का हो, अप्रमत्त हो जाता है ।
प्रकट और शुभ लिंग धार, सम्यक्त्व शुद्ध कर लेता है ।।
अविकल सत्त्व समितिधर मुनि, सब प्राण-भूत और जीवो के ।
विश्वसनीय रूप होते वे, पार्थिवादि जग जीवो के ।।
परम जितेन्द्रिय हो जाता, प्रतिलेखन थोडा रह जाता ।
विपुल समिति एव तप का, परिपूर्ण समागम हो जाता ।।४२।।

साधु सघ की सेवा से, भन्ते ! क्या जीव यहाँ पाता ।
इससे तीर्थंकर नाम गोत्र का, वह अर्जन है कर जाता ।।४३।।

सब गुण से सम्पन्न जीव, भन्ते ! क्या इस जग मे पाता ।
इस गुण को धारण कर प्राणी, अविचल शिव पद को पा जाता ।।
जिसको मिल जाती मुक्ति यहाँ, वह परम सुखी है हो जाता ।
शारीरिक मानस दु खो से, छुटकारा फिर तो पा जाता ।।

वीतरागता धारण कर, भन्ते ! क्या लाभ जीव पाता ?
इससे तृष्णा और स्नेहो के, वन्धन का छेदन हो जाता ॥
शुभ अशुभ भाव को वीतराग, मन से अन्तर है तज देता ।
शब्द रूप रस गन्ध स्पर्श से, मन विरक्त है वन जाता ॥४

भन्ते ! क्षमा भाव से प्राणी, क्या इस जग मे है पाता ।
क्षमाभाव से परिषहो पर, विजय प्राप्त वह कर जाता ॥४

भन्ते ! प्राणी निर्लोभ भाव, पाकर जग मे क्या है पाता ?
इससे जीव अकिंचनता को, सहज रूप मे पा जाता ॥
कभी अकिंचन प्राणी को, अर्थी जन गण ना प्यार करे ।
नही चाह के योग्य अकिंचन, माया त्यागी ना भीति धरे ॥४

भन्ते ! ऋजुता को धारण कर, है जीव यहॉ पर क्या पाता ?
इससे तन मन भापा मे, सारल्य भाव है आ जाता ॥
सरल भाव के प्राणी मे, तन मन मे आर्जव आ जाता ।
आर्जव गुण से युक्त जीव, फिर धर्माराधक वन जाता ॥४

भन्ते ! मृदुता को धारण कर, है जीव यहॉ पर क्या पाता ?
उद्धतता तज मृदु मन से, कोमलता जग मे पा जाता ॥
जीव अनुद्धत मानस मृदु, मार्दव सयुत जग मे रहकर ।
मद के आठ पदो को क्षण मे, क्षयकर देता है हँसकर ॥४

भाव सत्य धारण कर भन्ते, जीव जगत मे क्या पाता ?
भाव सत्य से भाव शुद्धता, को प्राणी है पा जाता ॥
इसमे वर्तमान प्राणी, अर्हत् - मत - आराधन-तत्पर ।
होकर वन जाता आराधक, परलोक धर्म का वह सत्वर ॥५

भन्ते ! करण सत्य पालन कर, जीव जगत् मे क्या पाता ?
करण सत्य मे कार्यशक्ति को, प्राणी जग मे पा जाता ॥
करण सत्य मे वर्तमान, प्राणी जैसा मुख से कहता ।
निश्छल भाव हृदय मे धर, वह कार्य सदा वैसा करता ॥५

भन्ते ! योग सत्य धारण कर, जीव यहाँ पर क्या पाता ?
योग सत्य से देह वचन मन, क्रिया शुद्धि है कर जाता ।।५२।।

भन्ते ! मनोगुप्तता से, प्राणी क्या जग मे पाता ?
मनोगुप्ति एकाग्र भाव का, उत्तम साधन बन जाता ।।
एकाग्रचित्त सकल्प अशुभ से, निज मन की रक्षा करता ।
एव सयम का आराधक, वह भूतल पर समझा जाता ।।५३।।

भन्ते ! वचन गुप्तता से, क्या जीव यहाँ पर है पाता ?
वचन गुप्ति से निर्विकारता, भाव जगत मे पा जाता ।।
निर्विकार होकर यह प्राणी, वचन गुप्त हो जाता है ।
अध्यात्म योग के साधन से, फिर ध्यान गुप्त वन जाता हे ।।५४।।

कायगुप्तता धारणकर, भन्ते ! क्या प्राणी पाता है ?
कायगुप्तता से प्राणी, जीवन मे सवर पाता है ।।
सवर के द्वारा कायगुप्त, प्राणी फिर जग मे क्या करता ।
फिर पापास्रव का वह निरोध, है अनायास हो कर जाता ।।५५।।

भन्ते ! मन आगम भावो मे, धारण कर प्राणी क्या पाता ?
श्रुत मे मन को स्थित करने से, एकाग्र भाव स्थिर हो जाता ।।
पाकर के एकाग्र भाव, वह ज्ञानपर्यवो को पाता ।
जिससे सम्यक् दर्शन विशुद्ध, हो मिथ्या दर्शन हट जाता ।।५६।।

भन्ते ! स्वाध्याय निरत वाणी से, प्राणी क्या जग मे है पाता ?
वाक्-साधारण दर्शनपर्यव, को विशुद्ध है कर जाता ।।
दर्शनपर्यव को कर विशुद्ध, वह सुलभ वोधिता पा लेता ।
दुर्लभ वोधि कर्म निर्जर कर, भव भ्रमण अल्पतम कर देता ।।५७।।

भन्ते ! कायिक समा धारणा से प्राणी क्या है पाता ?
सयम मे काया धारण से, चारित्र शुद्धि है कर जाता ।।
वीतरागपद पाकर के, फिर यथाख्यात निर्मल करता ।
जिससे केवलि-सत्क-चतुष्टय, कर्मो का क्षय कर देता ।।

फिर वनता है सिद्ध वुद्ध, और मुक्त अन्त मे हो जाता ।
कर निर्वाण प्राप्त जग मे, सव दु ख अन्त है कर लेता ॥५८॥

भन्ते ! होकर सम्पन्न ज्ञान, क्या प्राणी है जग मे पाता ?
सम्पन्न ज्ञान हो सकल पदार्थो, का है सहज ज्ञान पाता ॥
ज्ञान युक्त होकर प्राणी, गति अन्त चतुष्टय जग वन मे ।
पडकर भी नष्ट नही होता, एव चलकर भी भव मग मे ॥
जैसे सूत्र सहित सूची, गिरके भी होती नष्ट नही ।
वैसे ससूत्र प्राणी जग मे, रह कर भी होते नष्ट नही ॥
सम्पन्न ज्ञान तप ज्ञान विनय, चारित्र योग को पाता है ।
निज पर समय वोध कारण, प्रामाणिक माना जाता है ॥५९॥

भन्ते ! दर्शन सम्पन्न व्यक्ति, इस जगती मे क्या है पाता ?
दर्शन सम्पन्न भव मूल रूप, मिथ्यादर्शन छेदन करता ॥
इससे आगे चलकर उसका, है ज्ञान प्रकाश नही बुझता ।
आत्मा से परम ज्ञान दर्शन, सयोजन कर विहरण करता ॥६०॥

चारित्र पूर्णता से भन्ते !, यह जीव यहाँ क्या है पाता ?
शैलेशी भाव प्राप्त कर प्राणी, गिरि सम सयम मे स्थिर रहता ॥
करता शैलेशी श्रमण क्षीण, केवलिगत कर्म चतुष्टय को ।
आयुष्य नाम और गोत्र तथा, शुभ वेदनीय के दलिको को ॥
इसके पीछे वह सिद्ध वुद्ध, और पूर्ण मुक्त हो जाता है ।
पा परिनिर्वाण भाव पीछे, सव दु ख अन्त कर लेता है ॥६१॥

भन्ते ! श्रोत्रेन्द्रिय निग्रह से, प्राणी क्या जग मे पाता है ?
शुभ अशुभ शव्द पर निग्रह से, सव राग द्वेष टल जाता है ॥
शव्द जनित वह राग द्वेषवश, करता नही कर्म वन्धन ।
सयम वल मे वह पूर्ववद्ध, कर्मो का क्षय करता प्रतिक्षण ॥६२॥

भन्ते ! नयनेन्द्रिय निग्रह से, यह जीव जगत् मे क्या पाता ?
शुभ अशुभ रूप पर निग्रह से, मन राग द्वेष है मिट जाता ॥

वह रूप निमित्तक राग द्वेष, वश करता नही कर्म वन्धन।
और उस निमित्त से पूर्ववद्ध, कर्मो को क्षीण करे तत्क्षण ॥६३॥

भन्ते! घ्राणेन्द्रिय निग्रह से, यह जीव जगत मे क्या पाता?
शुभ अशुभ गन्ध पर निग्रह से, वह राग द्वेष से वच जाता॥
वह गन्ध निमित्तक रागद्वेषवश, करता नही कर्म वन्धन।
और उस निमित्त से पूर्ववद्ध, कर्मो को क्षीण करे तत्क्षण ॥६४॥

भन्ते! रसनेन्द्रिय निग्रह से, प्राणी क्या जग मे है पाता?
शुभ अशुभ रसो पर निग्रह से, वस राग द्वेष से वच जाता॥
वह रस निमित्त के राग द्वेष, वश करता नही कर्म वन्धन।
और उस निमित्त से पूर्ववद्ध, कर्मो को क्षीण करे तत्क्षण ॥६५॥

भन्ते! स्पर्शेन्द्रिय निग्रह से, प्राणी क्या जग मे है पाता?
शुभ अशुभ स्पर्श के निग्रह से, वस राग द्वेष है दव जाता॥
स्पर्श निमित्तक राग द्वेषवश, करता नही कर्म वन्धन।
और तन्निमित्त से पूर्ववद्ध, कर्मो को क्षीण करे तत्क्षण ॥६६॥

भन्ते! क्रोध विजय से प्राणी, क्या इस जग मे सुख पाता?
है क्रोध विजय से क्षमाभाव को, वह जीवन मे धर पाता॥
क्रोध वेदनीय कर्मो का, करता वह जीव नही वन्धन।
और तन्निमित्त से पूर्ववद्ध, कर्मो को क्षीण करे तत्क्षण ॥६७॥

भन्ते! मान-विजय से प्राणी, क्या इस जग मे है पाता?
मान-विजय से मृदुता का, गुण प्राणी मे है आ जाता॥
मान मोह का इस जग मे, वह करता नही कर्म वन्धन।
और तन्निमित्त से पूर्ववद्ध, कर्मो को क्षीण करे तत्क्षण ॥६८॥

भन्ते! माया विजय प्राप्त कर, प्राणी क्या जग मे पाता?
माया विजय मिलाकर प्राणी, ऋजुता गुण को है पा लेता
माया वेदनीय कर्मो का, करता नही जीव वन्
और तन्निमित्त से पूर्ववद्ध, कर्मो को क्षीण करे त

भन्ते ! लोभ-विजय से प्राणी, क्या इस जग मे है पाता।
लोभ जीत सतोष भाव को, इस जगती मे वह पाता॥
लोभ वेदनीय कर्मो का, करता नही जीव वन्धन।
और तन्निमित्त से पूर्ववद्ध, कर्मो को क्षीण करे तत्क्षण ॥७०॥

प्रेयदोप मिथ्या दर्शन के, जय से क्या प्राणी पाता ?
दर्शन ज्ञान चरण पालन के, लिए जीव उद्यत होता॥
अष्टकर्म मे ग्रन्थि-विमोचन, हेतु यहाँ तत्पर होता।
पूर्णक्षीण कर सका न जिसको, क्रमश उसे क्षीण करता॥
पाँच ज्ञान नव दर्शन की, और अन्तराय के पाँचो को।
तीनो को करता क्षीण सग, इन विद्यमान सव कर्मो को॥
उसके पीछे अतिश्रेष्ठ पूर्ण, वितिमिर अनन्तऔरनिरावरण।
परिशुद्ध लोक एव अलोक, दोनो का करता अवलोकन॥
करते वे केवलज्ञान तथा, केवलदर्शन का उत्पादन।
जव तक वह यहाँ सयोगी हो, तव तक ईर्यापथि का वन्धन॥
सुख स्पर्श प्रकृति का वन्धन है, दो समय मात्र स्थिति है होती।
और समय तीसरा पाकर के, निर्जीव दशा उसकी होती॥
होता जग मे वह कर्म-वद्ध, और पुट्ठ उदय मे है आता।
भोगा जाता और नष्ट अन्त, क्षण मे अकर्म भी हो जाता ॥७१॥

केवल पद आयु पालन कर, और भोग शेष वेदन करता।
अन्तर्मुहूर्त परिमाण आयु, रहने पर योग रोध करता॥
उस समय सूक्ष्म-क्रिय अप्रतिपातिक शुक्ल ध्यान रत वन जाता।
वह मनोयोग और वचन योग, दोनो निरोध क्रमश करता॥
उच्छ्वास और निश्वासो का, पीछे निरोध हे कर लेता।
उसके पीछे अ इ उ ऋ लृ का, जितने मे उच्चारण है होता॥
उस स्वल्प काल तक समुच्छिन्न, क्रिय अनिवृत्त मे रत होता।
अनगार चतुष्टय सत्कर्मो का, क्षीण करण तत्पर रहता ॥७२॥

फिर पीछे औदारिक कार्मण, सब विप्रहानि से तन तज कर।
सरल श्रेणि अस्पृष्ट गति से, सिद्धि मिलाता शिव पाकर ॥
ज्ञान भाव से बुद्ध मुक्त, लोकाग्र पहुँचकर स्थिर होता।
एक समय की गति से वह, भव त्याग गमन शिवपद करता ॥
प्राणी होने से सिद्ध पूर्व, करता है गति ऋजु श्रेणी से।
उसकी गति ऊपर को होती, नभ प्रदेश की श्रेणी से ॥
सम्यक्त्व पराक्रम पूर्वकथित, यह अर्थ वीर प्रभु से दर्शित।
आख्यात प्ररूपित प्रज्ञापित, और वीर श्रमण से उपदर्शित ॥७३॥

३० : तपो र्ग गति

जैसे राग द्वेष से सचित, पाप कर्म को मुनि तप ·
करता क्षीण एक मन कर, श्रवण करो तुम वह मुझसे

हिसा झूठ तथा चोरी, धन सग्रह एव मैथुन से।
होता आस्रव रहित जीव, रजनी मे भोजन विरमण से ।।२।

पत्र समिति से समित गुप्त, अकपाय जितेन्द्रिय गर्वरहित।
हो जाता है जीव अनास्रव, कर अपने को शल्य रहित ।।३।।

इनसे उलट कर्म करके, जो राग द्वेप से वन्ध किया।
करता क्षीण भिक्षु जैसे, सुन मैने प्रभु से धार लिया ।।४।।

जैसे बडे जलाशय का, कर द्वार-वन्द जल आगम का।
रवि तापयाकि उत्सेचन से, क्रम से शोपण होता जल का ।।५।।

ऐसे ही सयत पुरुपो के, पापास्रव के रुक जाने से।
सचित करोड भव कर्म राशि, होती विनष्ट तप साधन से ।।६।।

तप दो प्रकार का वतलाया, वाह्याभ्यन्तर जानो ऐसे।
पड्विधि का वाह्य कहा तप है, आभ्यन्तर भी समझो वैसे ।।७।।

अनशन एव ऊनोदरिका, भिक्षाचर्या रस-परिवर्जन।
काय-क्लेश मलीन भाव, पड्भेद वाह्य तप के साधन ।।८।।

मावधिक और निरवधि ऐसे, अनशन युग-विधि का वतलाया।
माकाक्ष कहा तप अल्पकाल, निष्काक्ष दूमरा वतलाया ।।९।।

सक्षिप्त रूप से छ प्रकार, इत्वरिक तपस्या के होते।
श्रेणि, प्रतर और घन तीजा, तूर्य वर्ग तप कह गाते ॥१०॥

वर्ग-वर्ग पचम तप है, छट्ठा प्रकीर्ण तप शासन मे।
ये इत्वर तप के भेद कहे, मन इच्छित फल देता क्षण मे ॥११॥

मरण समय का अनशन भी, है द्विविध शास्त्र मे बतलाया।
सविचार काय चेष्टा वाला, अविचार उलट दूजा गाया ॥१२॥

सपरिकर्म वा अपरिकर्म, दो भेद यहाँ इनके होते।
निर्हारी और अनिहारी, दोनो मे अशन त्याग होते ॥१३॥

द्रव्य क्षेत्र और काल भाव, और पर्यायो के कारण से।
अवमोदर पच प्रकार कहा, सक्षिप्त सूत्र की वाणी से ॥१४॥

जितना अनुमित भोजन जिसका, उससे कमकर यदि वह खाता।
अवमौदर्य द्रव्य से हो, जो जघन्य कण भी कम होता ॥१५॥

ग्राम नगर या राजधानि, आकर पल्ली या निगमस्थल।
खेडा कर्वट और द्रोण-पन्थ, मण्डप पत्तन सवाध सवल ॥१६॥

सन्निवेश आश्रमपद मे, सवर्त कोट या सार्थो मे।
सेना के शिविर विहार घोप, वा स्थली समाज के लोगो मे ॥१७॥

पाडा रथ्या या घर मे, ऐसे वा इतने उस स्थल मे।
मिले द्रव्य तो ग्रहण करे, यह नियम क्षेत्र ऊनोदर मे ॥१८॥

पेडा तथा अर्धपेडा, गोमूत्रिका पतगवीथी जैसे।
शखावर्त दीर्घ-जा आना, छट्ठी चर्या जानो ऐसे ॥१९॥

दिन के चारो प्रहरो मे, भिक्षाहित समय विचार किया।
उसमे भिक्षा लेते व्रत का, कालावमान यह नाम दिया ॥२०

अथवा पहर तीसरी के, कुछ शेप रहे भिक्षा लेवे।
चतुर्भाग हो शेपकाल, ऊनोदर तप मुनिवर सेवे ॥२१॥

यदि दाता नर वा नारी हो, भूषण सज्जित या अनलकृत।
हो अमुक अवस्था का धारी, या अमुक वस्त्र से हो सयुत ॥२२॥

अमुक दशा या ,वर्ण भावयुत, ग्रहण करूँ जो दे दाता।
ऐसी चर्या वाले मुनि का, भावोनोदर तप है होता ॥२३॥

द्रव्य क्षेत्र और काल भाव मे, कहे गये जो भाव यहाँ।
उनसे ऊन विचरता वह, पर्यवचारी मुनि गिनो वहाँ ॥२४॥

आठ भेद के गोचराग्र, यो सात एपणाएँ गाई।
और अन्य अभिग्रह जो ऐसे, भिक्षाचर्या है कहलाई ॥२५॥

दूध दही घृत आदि तथा, अतिशय प्रणीत पानक भोजन।
रस वाले द्रव्यो का वर्जन, तप कहलाता है रस वर्जन ॥२६॥

वीरासन आदिक आसन जो, है मानव के हित सुखदाई।
करे उग्र आसन धारण, तन क्लेश तपस्या बतलाई ॥२७॥

एकान्त तथा आपात रहित, स्त्री पशु पडक से शून्य स्थल।
शयनासन का सेवन करना, तप साधन हेतु कहा निर्मल ॥२८॥

बहिरग तपस्या को पड्विध, सक्षिप्त रूप से वतलाया।
अन्तर के तप को कहता अव, सुनलो क्रम से तुम सुखदाया ॥२९॥

प्रायश्चित्त' विनय वैयावच्च, चौथा हे स्वाध्याय खरा।
ध्यान और व्युत्सर्ग नाम, आभ्यन्तर तप भव-अन्तकरा ॥३०॥

---

१ भाव-ऊनोदरी तप के भेद।

आलोचनार्ह आदिक दश विध, व्रत शोधन को तप वतलाये ।
सम्यक् वहन करे जिसका मुनि, पायच्छित्त तप वह गाये ।।३२।।

वृद्धो के हित जो उठना, अजलि कर आसन का देना ।
गुरु की भक्ति या शुश्रूषा, हे विनयधर्म यह वतलाना ।।३३।।

आचार्य आदि दश विध जन मे, सम्बन्धित सेवा मन धरना ।
यथास्थान सेवन करना, है वैयावृत्ति तप वतलाना ।।३४।।

वाचन पृच्छा वा अनुवर्तन, अनुप्रेक्षा चौथा भेद रहा ।
है धर्मकथा प्रवचनदीपक, स्वाध्याय पच विध सूत्र कहा ।।३५।।

आर्त्त रौद्र को तज करके, स्थिर मन से जो सद्ध्यान करे ।
धर्म-शुक्ल मे स्थिर, होना बुध ध्यान तपस्या चित्त धरे ।।३६।।

वैठे उठे और सोए, जो कायवृत्ति का त्याग करे ।
काया का व्युत्सर्ग भेद, छट्ठा श्रोता जन ध्यान धरे ।।३७।।

यो द्विविध तपस्या को सम्यक्, जो मत सदा आचरण करे ।
वह शीघ्र सभी जग वन्धन से, पा मुक्ति, मुक्ति मे जा विचरे ।।३८।।

३१ : चरण विधि

चरण मार्ग का कथन करूँ मै, जो जीवो को सुखदायी।
जिसका कर आचरण वहुत जन, तिरे भवोदधि दु खदायी ॥१॥

करे एक से विरति और, शुभ एक प्रवर्तन सुखकर है।
हो दूर असयम वर्तन से, सयम मे चलना हितकर है ॥२॥

राग-द्वेप दो मूल पाप है, इनसे पापकर्म वढते।
इनका जो मुनि रुँधन करते, वे न जगत् मे है रहते ॥३॥

गौरव दड शल्य तीनो, ये त्रिविध भेद कर वतलाये।
वर्जन इनका जो करे सदा, वह भिक्षु न जग मे रह पाये ॥४॥

देव तथा तिर्यच मनुज कृत, उपसर्गो को जो सहता।
नित्य सहन करने वाला, वह भिक्षु नही जग मे रहता ॥५॥

विकथा कपाय एव सज्ञा, और आर्त रौद्र वर्जन करता।
जो इन्हे दूर मन से करता, वह भिक्षु नही जग मे रहता ॥६॥

इन्द्रिय विपय क्रियावर्जन मे, समिति व्रतो के पालन मे।
मन से सदा यत्न जो करता, भिक्षु न वह रहता जग मे ॥७॥

छ लेश्याओ छ कायो, और अशन ग्रहण के कारण मे।
मन से सदा यत्न जो करता, भिक्षु न रहता भव-वन मे ॥८॥

अशन ग्रहण की प्रतिमाओ मे, तथा सप्त भय स्थानो मे।
मन से सदा यत्न जो करता, भिक्षु न रहता भव-वन मे ॥९॥

ब्रह्मगुप्ति नव आठ मदो मे, मुनि के दशविध धर्मो मे।
मन से सदा यत्न जो करता, भिक्षु न रहता है जग मे ॥१०॥

उपासको की प्रतिमाओ, और भिक्षु जनो की प्रतिमाओ मे।
मन से सदा यत्न जो करता, भिक्षु न वह रहता जग मे ॥११॥

तेरह क्रिया वा भूतग्राम मे, परमाधार्मिक सुरगण मे।
मन से सदा यत्न जो करता, भिक्षु न वह रहता जग मे ॥१२॥

सूत्रकृताग के षोडश मे, एव सकल असयम मे।
मन से सदा यत्न जो करता, भिक्षु न वह रहता जग मे ॥१३॥

ब्रह्मचर्य ज्ञाताध्ययनो, और असमाधि के स्थानो मे।
मन से सदा यत्न जो करता, भिक्षु न वह रहता जग मे ॥१४॥

जो इक्कीस शवल दोषो मे, और परीषह बाईस मे।
मन से सदा यत्न जो करता, भिक्षु न वह रहता जग मे ॥१५॥

सूत्रकृताग के अध्ययनो मे, रूपाधिक चौबीस देवो मे।
मन से सदा यत्न करता जो, भिक्षु न रहता है जग मे ॥१६॥

जो पच्चीस भावनाओ, छब्बीस दशादि उद्देशो मे।
नित्य यत्न जो करता है, वह भिक्षु न रहता है जग मे ॥१७॥

जो सत्ताईस साधु गुणो मे, एव आचार प्रकल्पो मे।
मन से सदा यत्न करता, वह भिक्षु न रहता है जग मे ॥१८॥

उनतीस पाप प्रसगो मे, और तीस मोह के स्थानो मे।
नित्य यत्न जो करता है, वह भिक्षु न रहता है जग मे ॥१९॥

सिद्धादिक गुण योगो मे, तैंतीस आसातन स्थानो मे।
नित्य यत्न जो करता है, वह भिक्षु न रहता है जग मे ॥२०॥

इस प्रकार इन स्थानो मे, जो भिक्षु सदा श्रम करता है।
वह पण्डित शीघ्र सकल जग के, वन्धन से विमुक्त हो जाता है ॥२१॥

●

३२ : प्रमाद-परित्याग

चिरकालिक मूलसहित सब दु ख, का मोचन मार्ग कहा प्रभु ने ।
कहूँ उसे लो एकचित्त सुन, हित वाणी हित को पाने ॥१॥

होता है प्रकट ज्ञान सारा, अज्ञान मोह के वर्जन से ।
हो राग-द्वेष का क्षय पूरा, एकान्त सौख्य मिलता इससे ॥२॥

है मार्ग मुक्ति का गुरु सेवा, वर्जन हो वाल-वोध जन का ।
निश्चय स्वाध्याय निसेवन हो, सूत्रार्थ मनन धृतिवल मन का ॥३॥

समाधिकामी श्रमण करे, परिमित निर्दोप अशन इच्छा ।
मुनि निपुण बुद्धि का सग करे, निर्दोष स्थान भी हो अच्छा ॥४॥

जो मिले न कोई निपुण सग, गुण से वढकर या समगुणधर ।
एकाकी पाप वचा करके, विचरे मन विपयो से हटकर ॥५॥

जैसे वक अण्डे से होता, और अण्ड वलाका से होता ।
ऐसे ही मोह सदन तृष्णा, और तृष्णा से मोह उदय होता ॥६॥

है राग-द्वेप दो कर्म वीज, और कर्म मोह से होता है ।
है जन्म-मरण का मूल कर्म, जनु मरण दु ख कहलाता है ॥७॥

जिसको न मोह है दु ख मिटा, है नष्ट मोह तृष्णा न जिसे ।
तृष्णा मेटी तो लोभ नही, जव लोभ गया कुछ भी न उसे ॥८॥

राग-द्वेष और मोहकर्म के, मूल मिटाने वालो से ।
जो उपाय करने होते, उनको मै कहता हूँ क्रम से ॥९॥

रस का अतिसेवन करे नही, रस मन को उत्तेजित करता।
चचल को देते काम कष्ट, ज्यो सुफल वृक्षपर खग घिरता ॥१०॥

इन्धन अनिल सग वन मे, दावानल शान्त नही होता।
ऐसे विपयानल अतिभोजी, जन को न कभी हितकर होता ॥११॥

एकान्त शयन आसन- यन्त्रित, लघुभोजी इन्द्रियजित् जन को।
ना राग शत्रु दे कष्ट उसे, जैसे औपधजित् रुज तन को ॥१२॥

जैसे बिल्ली के पास वास, चूहो का सुखद नही होता।
ऐसे ही ब्रह्मव्रती जन का, नारी-गृहवास न शुभ होता ॥१३॥

ना श्रमण तपस्वी नारी के, लावण्य हास इगित जल्पन।
वीक्षण विलास रख के मन मे, प्रमदा छवि का न करे दर्शन ॥१४॥

ब्रह्मचर्य मे लीन व्रती के, नारी दर्शन चिन्तन वर्णन।
करना न कभी हितकर निशदिन, है आर्यध्यान यह शास्त्रवचन ॥१५॥

त्रिगुप्ति-गुप्त मुनि को विचलित, कर सके न सज्जित देवी भी।
एकान्त लाभ के हेतु जान, है वास विविक्त कहा फिर भी ॥१६॥

भव-भीरु धर्मस्थित मोक्षार्थी, के लिए न कुछ ऐसा दुस्तर।
जैसा वाल मनोहारी, नारी का नेह, विजय दुष्कर ॥१७॥

जो विपय सॅग को पार किया, फिर शेप विजय सुखकर होता।
जैसे सागर तिर जाने पर, गगा का पार सहज होता ॥१८॥

है काम-गृद्धि उत्पन्न दु ख, सव देव सहित जगती-जन के।
कायिक या मानस जो कुछ भी, पाते जिनदेव अन्त उस के ॥१९॥

जैसे किपाक भक्षण के क्षण, रस-वर्ण मनोरम होते है।
पर पीछे करता प्राण हरण, यो विपय जगत् मे होते ह ॥२०॥

जो इन्द्रिय के है रुचिर विपय, उनमे ना मुनि मन ललचाएँ ।
और अशुभ विपय मे शान्तिकाम, सयत मन खेद नही लाएँ ॥२१॥

रूप चक्षु का ग्रहण कहा, शुभराग हेतु वह होता है ।
है अशुभ दोप का हेतु कहा, दोनो मे जिन सम रहता है ॥२२॥

है चक्षु रूप का ग्रहण हेतु, आर रूप चक्षु का विपय कहा ।
समनोज्ञ राग का हेतु तथा, अमनोज्ञ दोप का हेतु कहा ॥२३॥

रुचिररूप मे मूर्छित जो, वह क्षय अकाल मे है पाता ।
रागी पतग सम ज्योति लुब्ध, है दीप शिखा मे जल जाता ॥२४॥

जो भी कुरूप पर दोप धरे, उस क्षण मे वह दु ख पाता है ।
दुर्दान्त निजी दूपण से ही, अपराध रूप ना करता है ॥२५॥

एकान्त रक्त शुभ रूपो मे, अपरूपो मे जो द्वेप धरे ।
वह वाल दु:ख पीडा पाता, ना मुनि विराग मन लेप धरे ॥२६॥

रूपो का पीछा करके नर, अति त्रस स्थावर हिंसा करता ।
गुरु मान स्वार्थ को मूढ उन्हे, अनुतप्त और पीडित करता ॥२७॥

रूपानुराग और सग्रह से, उत्पादन रक्षण करता है ।
सहसा व्यय और वियोग दु ख, ना भोग समय सुख पाता है ॥२८॥

हो अतृप्त जो रूप-ग्रहण मे, रजित मन पाता तोप नही ।
असतोप से दु खी वना, लोभाकुल हरता द्रव्य वही ॥२९॥

तृष्णावश हार करे चोरी, होता अतृप्त छवि पाने मे ।
पा लोभ वढे माया मिथ्या, हो मुक्त नही दु ख पाने मे ॥३०॥

झूठ वोलते आगे-पीछे, अतिदु खी प्रयोग मे होता है ।
यो रूप अतृप्त दु खी आश्रय-विन पर धन सदा चुराता है ॥३१॥

कब कैसे किंचित् सुख होगा, जो नर है रूपासक्त यहाँ ।
जिसके हित दुख उठाता है, उसमे भी पाता सौख्य कहाँ ॥३२॥

यो द्वेप रूप मे जो करता, नानाविध दुख वह पाता है ।
द्वेपी कर्मो का वन्ध करे, फल उसका दुखमय होता है ॥३३॥

हो शोक-रहित जो रूप विरत, विधविध दुखो से लिप्त नही ।
भव पुष्करिणी मे शतदलसम, अघ जल से पाता लेप नही ॥३४॥

शब्द श्रोत्र का विषय, रागका हेतु मनोज्ञ कहा जाता ।
है द्वेप हेतु अमनोज्ञ उभय मे, वीतराग सम हो रहता ॥३५॥

शब्दो का ग्राहक श्रोत्र कहा, है शब्द श्रोत्र का ग्रहण वडा ।
वह राग हेतु समनोज्ञ और, अमनोज्ञ दोप का हेतु कडा ॥३६॥

शब्दो मे आसक्त तीव्र, विन समय नाश वह है पाता ।
रागातुर मुग्ध हरिण जैसे, वह निधन तृप्ति विन है पाता ॥३७॥

प्रतिकूल शब्द मे तीव्र दोप, करता तत्क्षण वह दुख पाता ।
है उसका दुर्दम दोप हेतु, अपराध शब्द ना कुछ करता ॥३८॥

अतिरिक्त रुचिर शब्दो मे जो, प्रतिकूलो मे वह रोप धरे ।
वह वाल दुख पीडा पाता, मुनि हो विरक्त ना राग करे ॥३९॥

शब्दभिलाप अनुरागी नर, चर अचर जीव हिंसा करता ।
गुरु मान स्वार्थ को मूढ उन्हे, अनुतप्त और पीडित करता ॥४०॥

शब्दानुराग और ममता मे, उत्पादन भोग तथा रक्षण ।
व्यय और वियोग मे सौख्य कहाँ, उपभोग काल ना मन तर्पण ॥४१॥

शब्दार्थी सग्रह मे रहता, आसक्त तोप पाता न कही ।
अतृप्ति-दुखी परधनहारी, लोभी मन मे सकोच नही ॥४२॥

तृष्णाभिभूत करता चोरी, ना तृप्त शब्द के पाने मे ।
पा लोभ बढे माया मिथ्या, हो मुक्त नही दुख पाने मे ॥४३॥

झूठ बोलते आगे पीछे, अतिदुखी प्रयोग मे होता है ।
यो शब्द अतप्त दुखी आश्रय, बिन परधन सदा चुराता है ॥४४॥

कब कैसे किंचित् सुख होगा, जो नर है शब्दासक्त यहाँ ।
जिसके हित दुख उठाता है, उसमे भी पाता सौम्य कहाँ ॥४५॥

यो द्वेष शब्द मे जो करता, नानाविध दुख वह पाता है ।
द्वेषी कर्मो का बन्ध करे, फल उसका दुखमय होता है ॥४६॥

शब्द विरत-गत शोक हुआ, विधविध दुखो से लिप्त नही ।
भव पुष्करिणी मे शतदलसम, अघ जल से पाता लेप नही ॥४७॥

है गन्ध घ्राण का विषय, रागका हेतु मनोज्ञ कहा जाता ।
अमनोज्ञ द्वेष का हेतु उभय मे, वीतराग सम हो रहता ॥४८॥

गन्धो का घ्राण ग्रहण करता, घ्राणो का गन्ध विषय भारी ।
है रुचिर राग का हेतु कहा, अरुचिर मनको है दुखकारी ॥४९॥

आसक्त सुघड गन्धो मे जो, वह क्षय असमय मे है पाता ।
रागातुर औषधि गन्ध-गृद्ध, अहिसमबिल बाहर हो मरता ॥५०॥

यो द्वेष गन्ध मे जो करता, नानाविध दुख वह पाता है ।
द्वेषी कर्मो का बन्ध करे, फल उसका दुखमय मिलता है ॥५१॥

एकान्त रक्त शुभ गधो मे, दुर्गन्धो मे जो द्वेष धरे ।
वह बाल दुख पीडा पाता, ना मुनि विरक्त मन लेप करे ॥५२॥

गन्धो की इच्छा धर के नर, अतित्रस स्थावर हिसा करता ।
गुरु मान स्वार्थ को मूढ उन्हे, अनुतप्त और पीडित करता ॥५३॥

गन्धानुराग और सग्रह से, उत्पादन रक्षण भोग करे।
व्यय और वियोग से दुख पावे, ना भोग समय भी तृप्ति धरे ॥५४॥

हो अतृप्त नर गन्ध ग्रहण मे, रजित मन पाता तोप नही।
यो असतोप से दुखी वना, लोभाकुल हरता द्रव्य वही ॥५५॥

तृष्णावश हार करे चोरी, ना तृप्त गन्ध के पाने मे।
पा लोभ वढे माया मिथ्या, हो मुक्त नही दुख पाने मे ॥५६॥

झूठ वोलते आगे पीछे, अतिदुखी प्रयोग मे होताहै।
यो गन्ध अतृप्त दुखी आश्रय, बिन परधन सदा चुराता है ॥५७॥

गन्धानुरक्त नर को जग मे, कैसे कुछ होता सौख्य यहाँ।
जिसके हित दुख उठाता है, उसमे भी पाता सौख्य कहाँ ॥५८॥

यो द्वेप गन्ध मे जो करता, नानाविध दुख वह पाता है।
द्वेपी कर्मो का वन्ध करे, फल उसका दुखमय होताहै ॥५९॥

हो शोक रहित जो गन्ध विरत, विधविध दुखोसे लिप्त नही।
भव पुष्करिणी मे शतदलसम, अघजल से पाता लेप नही ॥६०॥

जिह्वा का रस विपय राग, का हेतु मनोज्ञ कहा जाता।
है द्वेप हेतु अमनोज्ञ उभय, मे वीतराग सम हो रहता ॥६१॥

रसना रसभाव ग्रहण करती, रस रसना का है ग्राह्य महा।
समनोज्ञ राग का हेतु और, है दोप हेतु अमनोज्ञ कहा ॥६२॥

शुभ रस मे जो आसक्त मनुज, विन समय नाश हे वह पाता।
रागातुर मास विदीर्ण देह, ज्यो मत्स्यमास रुचि दुख पाता ॥६३॥

जो नीरस पर अति दोप धरे, उस क्षण मे वह दुख पाता है।
दुर्दान्त निजी दूपण से ही, अपराध नही रस करता है ॥६४॥

एकान्त रवत शुभ स्वादो मे तीव्र मे जो अतिरोष धरे।
वह मूढ दुःख पीडा पाता ना विरक्त मुनि मन लेप करे ॥६५॥

शुभ रस की इच्छा लेकर जो चर अचर जीव हिंसा करता।
विधविध रूपो से त्रस्त करे निज स्वार्थ मुख्य पीडा करता ॥६६॥

रस मे प्रीति और सग्रह मे उत्पादन रक्षण भोग करे।
व्यय और वियोगमे दुःखपाता, ना भोग काल भी तृप्ति धरे ॥६७॥

हो अतृप्त रस भाव ग्रहण मे रजित मन पाता तोष नही।
यो असतोष मे दुःखी बना, लोभाकुल हरता द्रव्य वही ॥६८॥

तृष्णावश हार करे चोरी, होकर अतृप्त रस पाने मे।
पा लोभ बढे माया मिथ्या, हो मुक्त नही दुःख पाने मे ॥६९॥

झूठ बोलते आगे पीछे, अति दुःखी प्रयोग मे होता है।
असतुष्ट रस हरण करे, आश्रय बिन दुःख उठाता है ॥७०॥

अब कैसे किंचित् सुख होगा, जो बना स्वाद आसक्त यहाँ।
जिस भोग हेतु दुःख पाता है, उसमे भी पाता सौख्य कहाँ ॥७१॥

रखता है द्वेष रसो मे जो, नानाविध दुःख उठाता है।
द्वेषी कर्मों का बन्ध करे, फल दुःखमय उसका पाता है ॥७२॥

गत शोक विरत रस होता है, दुःखो से होता लिप्त नही।
भव पुष्करिणी मे शतदलसम, अघ जल से पाता लेप नही ॥७३॥

है स्पर्शकाय का विषय कहा, समनोज्ञ राग के हेतु कहे।
है द्वेष हेतु अमनोज्ञ उभय मे, वीतराग समभाव रहे ॥७४॥

स्पर्शों का काय ग्रहण करता, है स्पर्श विषय तन का भारी।
है रुचिर राग का हेतु कहा, अरुचिर हृदय को भयकारी ॥७५॥

स्पर्शो मे तीव्र चाह करता, विन समय नाश को पाता है।
रागी शीतलजलमग्नमहिपसम, ग्राह ग्रसित हो मरता है ॥७६॥

जो अशुभ स्पर्श मे तीव्र दोप, करता तत्क्षण वह दुख पाता।
है अपना दुर्दम दोप हेतु, अपराध न स्पर्श वहाँ करता ॥७७॥

अनुरक्त रुचिर स्पर्शो मे जो, प्रतिरूप स्पर्श मे दोप धरे।
वह वाल दुख पीडा पाता, मुनि हो विरक्त न राग करे ॥७८॥

स्पर्शाभिलाप अनुगामी नर, चर अचर जीव हिसा करता।
गुरुमान स्वार्थ को मूढ उन्हे, अनुतप्त और पीडित करता ॥७९॥

स्पर्शानुराग और ममता से, उत्पादन भोग तथा रक्षण।
व्यय और वियोगमे सौख्य कहाँ, उपभोग काल ना मन तर्पण ॥८०॥

स्पर्शार्थी हो सग्रह करता, आसक्त तोप पाता न कही।
विन तृप्ति दुखित परधनहारी, लोभी मन मे सकोच नही ॥८१॥

तृष्णावश हार करे चोरी, ना तृप्त स्पर्श को पाने मे।
पा लोभ वढे माया मिथ्या, हो मुक्त नही दुख पाने मे ॥८२॥

झूठ वोलते आगे पीछे, अति दुखी प्रयोग मे होता है।
यो स्पर्श अतृप्त दुखी आश्रय, विन परधन सदा चुराता है ॥८३॥

कव कैसे किचित् सुख होगा, जो नर है स्पर्शासक्त यहाँ।
जिसके हित दुख उठाता है, उसमे भी पाता सौख्य कहाँ ॥८४॥

यो द्वेप स्पर्श मे जो करता, नानाविध दुख उठाता है।
प्रद्वेपी कर्म वन्ध करता, फल उसका दुखमय पाता है ॥८५॥

इ स्पर्श विरत गत शोक हुआ, विधविध दुखो मे लिप्त नही।
भव पुष्करिणी मे शतदलसम, अघ जल मे पाता लेप नही ॥८६॥

है भाव चित्त का विषय राग, का हेतु मनोज्ञ है कहलाता ।
है द्वेष हेतु अमनोज्ञ उभय मे, वीतराग सम हो रहता ॥८७॥

भावो को चित्त ग्रहण करना, है मन का भाव विषय भारी ।
है रुचिर राग का हेतु तथा, यो अशुभ हेतु दूषणकारी ॥८८॥

भावो मे तीव्र चाह वाला, विन समय नाश को पाता है ।
रागातुर करिणी मार्ग लीन, दन्ती जैसे तन खोता है ॥८९॥

जो अशुभ भाव मे तीव्र दोष, करता तत्क्षण वह दु ख पाता ।
उसका ही दुर्दम दोष हेतु, अपराध न भाव वहाँ करता ॥९०॥

आसक्त रुचिर भावो मे जो, और दोष अशोभन मे करता ।
वह मूढ दु ख पीडा पाता, न लिप्त विरक्त श्रमण होता ॥९१॥

भावाभिलाप अनुगामी नर, चर अचर जीव हिंसा करता ।
गुरु मान स्वार्थ को मूढ उन्हे, अनुतप्त और पीडित होता ॥९२॥

भावानुराग की ममता से, उत्पादन भोग तथा रक्षण ।
व्यय और वियोगमे सौख्य कहाँ, उपभोग काल ना मन तर्पण ॥९३॥

हो अतृप्त नर भाव ग्रहण मे, रजित मन पाता तोष नही ।
विन तृप्ति दु खित परधन हरते, लोभी मन मे सकोच नही ॥९४॥

तृष्णावश हार करे चोरी, ना तृप्त भाव के पाने मे ।
या लोभ वढे मायामिथ्या, हो मुक्त नही दु ख पाने मे ॥९५॥

झूठ वोलते आगे पीछे, वह दु खी प्रयोग मे होता है ।
यो भाव अतृप्त दु खी आश्रय, विन परधन सदा चुराता है ॥९६॥

कव कैसे किंचित् सुख होगा, जो नर है भावासक्त यहाँ ।
जिसके हित दु ख उठाता है, उसमे भी पाता सौख्य कहाँ ॥९७॥

यो द्वेष भाव मे जो धरता, वह दु खको क्रमिक प्राप्त करता ।
है द्वेषी करता कर्म बन्ध, फल उसका दु खमय है पाता ॥९८॥

है भाव विरत नर शोक मुक्त, विध-विध दु खोसे लिप्त नही ।
भव पुष्करिणी मे शतदल सम, अघ जल से पाता लेप नही ॥९९॥

इन्द्रिय और मन के विषय यहाँ, रागी को दु ख कारण होते ।
वे वीतराग के लिए नही, थोडे भी दु खदायी होते ॥१००॥

समता के हेतु न कामभोग, है नही विकार हेतु होते ।
उनके प्रति जिनके राग द्वेष, वे मोह विवश विकृत होते ॥१०१॥

क्रोध मान माया भय अरति, लोभ जुगुप्सा तथा रति ।
हर्ष शोक एव नानाविध, नर-स्त्री-षडक भाव गति ॥१०२॥

जो काम गुणो मे सक्त पुरुष, वह विविध विकारो को पाता ।
नरकादि कष्ट से दीन-हीन, लज्जित अप्रिय हो दु ख सहता ॥१०३॥

सेवाहित चाहे शिष्य नही, अनुताप न तप फल चाह करे ।
इच्छा से इन्द्रिय वश होकर, अगणित विकार को प्राप्त करे ॥१०४॥

फिर मोहोदधि मे गिरवाने, विषयेच्छा उनको होती है ।
सुख-अर्थी दु ख मिटाने को, उसमे उद्यम मति जगती है ॥१०५॥

विरक्त मन वाले जन को, शब्दादि विषय जितने सारे ।
अच्छे न उसे होते प्यारे, अमनोज्ञ नही होते खारे ॥१०६॥

है राग द्वेष ही दोष मूल, ना इन्द्रिय विषय करे चिन्तन ।
माध्यस्थ भाव चिन्तन करते, कामेच्छा घटती है प्रतिक्षण ॥१०७॥

वह वीतराग कृतकृत्य बना, ज्ञानावरोध को नष्ट करे ।
दर्शन रोधक और अन्तराय, कर्मों को क्षण मे क्षीण करे ॥१०८॥

सब जग को जाने और देखे, निर्मोह विघ्न जग करवावे।
अनास्रवी और ध्यान युक्त, कर पूर्ण आयु शिव पद पावे ॥१०९॥

जीवों को सतत कष्ट देते जगती के उन सब दुःखों से।
हो जाता मुक्त प्रशंसनीय वह सुखी कृतार्थ सकल मन से ॥११०॥

चिरकाल जात सब दुःखों का, है मोक्ष मार्ग यह बतलाया।
हो जाते क्रमशः जीव सुखी, जिसने इसको है अपनाया ॥१११॥

३३ : कर्म-प्रकृति

अष्ट कर्म का क्रमिक करूँ मैं, अनुपूर्वी से विश्लेपण।
जिनसे बँधकर यह जीव यहाँ, अनुपल करता है परिवर्तन ॥१॥

ज्ञानावरण और दर्शन, आवारक कर्म भयकर है।
है वेदनीय और मोह भुलाता, आयुष वन्धन कारक है ॥२॥

नाम और है गोत्रकर्म, फिर अन्तराय वैसे जानो।
इन आठो कर्मों का यो ही, मक्षिप्त रूप वर्णन, मानो ॥३॥

है ज्ञानावरण पच भेदक, श्रुत आभिनिवोधिक ज्ञान यहाँ।
अवधि और मन पर्यव, केवल का रोके ज्ञान वहाँ ॥४॥

निद्रा तथैव निद्रा-निद्रा, प्रचला दर्शन को रोक रहे।
प्रचला-प्रचला स्त्यानगृद्धि, ये आवारक विध पच कहे ॥५॥

चक्षु अचक्षु अवधि एव, केवल दर्शन के आच्छादन।
इस तरह जान लो नव विकल्प, यह कर्म दूसरे का वर्णन ॥६॥

है वेदनीय के युगल भेद, सुख और असाता कहलाता।
साता के विविध भेद ऐसे, दुःख भी नाना रूपक होता ॥७॥

है मोहनीय के मुख्य भेद, दर्शन चारित्र दूषित करते।
दर्शन को त्रिविध कहा प्रभु ने, चारित्र युगल विध है कहते ॥८॥

सम्यक्त्व और मिथ्यात्व भेद, तीजा सम्यक् मिथ्या जानो।
ये तीन प्रकृतियाँ बतलायी, दर्शन मोहक की पहचानो ॥९॥

चारित्र मोहन करने वाला है कर्म युगल विध बतलाया।
है कषाय एवं नो कषाय, युग रूप मोह प्रभु ने गाया ॥१०॥

है सोलह भेद कषायों के जिनवर आगम मे बतलाते।
और नो कषाय के भेद सात या नव हास्यादिक कहलाते ॥११॥

है आयुकर्म के चार भेद जिनवर सूत्रो मे बतलाते।
नारक तिर्यक् मनुजायु तथा देवायु चतुर्थ को है गाते ॥१२॥

नाम कर्म के युगल भेद, शुभ अशुभ विश्व मे बतलाये।
है भेद बहुत शुभ के जैसे, ही अशुभ नाम भी है गाये ॥१३॥

गोत्र कर्म भी युगल रूप मे उच्च नीच यों कहलाते।
है उच्च गोत्र के अष्ट भेद, यो नीच गोत्र के भी गाते ॥१४॥

दान लाभ उपभोग भोग, और वीर्य प्रगट ना हो जिससे।
सक्षिप्त रूप मे पाच भेद, सत्कर्म नही होवे जिससे ॥१५॥

है मूल और उत्तर विध मे कर्मों की बात कही सारी।
है प्रदेशाग्र और क्षेत्रकाल, भावो की सुनलो तैयारी ॥१६॥

सबही कर्मों के प्रदेशाग्र, है अनन्त ग्रहणायोग्य यहाँ।
ग्रन्थिक सत्त्वो से अधिक और, है न्यून सिद्ध से अनन्त वहाँ ॥१७॥

संग्रह योग्य कर्म जीवो के, सभी दिशा मे सुस्थित है।
सभी प्रदेशो मे होते ये कर्म पूर्ण सम्बन्धित है ॥१८॥

तीस कोटि-कोटि सागर, परिमितस्थिति परम कही उनकी।
अन्तर्मुहूर्त की स्थिति होती, न्यूनातिन्यून उन कर्मो की ॥१९॥

दोनो ही आवरणो की, और वेदनीय की स्थिति जानो।
फिर विघ्न कर्म का भी इतना, ही काल स्थिति को पहचानो ॥२०॥

मोहनीय की परम स्थिति है, सत्तर कोटि-कोटि सागर ।
न्यूनातिन्यून अन्तर्मुहूर्त, का काल कहा है मतिसागर ॥२१॥

सागर तैंतीस की उपमा से, उत्कृष्ट स्थिति है जीवन की ।
अन्तर्मुहूर्त है अल्पकाल, बतलायी ज्ञानी ने जग की ॥२२॥

है नाम गोत्र की परम स्थिति, विशति-विशति कोटिक सागर ।
होती है उसकी अल्पस्थिति, आठ मुहूर्त इस जगती पर ॥२३॥

भाग अनन्तवे सिद्धो के, अनुभाग कर्म है बतलाते ।
अनुभागो के वे सब प्रदेश, सब जीवो से बढकर होते ॥२४॥

सब कर्मों के अनुभागो का, यो परिचय पा जग मे बुधजन ।
इनके सवरण और क्षय मे, प्रतिपल करते है पूर्ण यतन ॥२५॥

●

३४ : लेश्या

लेश्याओ का कथन करू, पूर्वानुपूर्वी से क्रमिक यथा ।
षट् सम्यक उन लेश्याओ के, अनुभाव सुनो तुम यथा-तथा ॥१॥

लेश्याओ के नाम वर्ण, रस गन्ध स्पर्श परिणाम कथन ।
लक्षण आयु स्थितिस्थान गमन, मुझसे तुम विधिवत् करो श्रवण ॥२॥

कृष्ण नील कापोत तेज, है जग मे पद्मा शुक्ल तथा ।
ये नाम क्रमिक लेश्याओ के, श्रीवीर प्रभु ने कहे यथा ॥३॥

स्निग्ध-मेघ और महिप शृ ग, समवर्ण अरीठा के जानो ।
खजन अजन और नयन बिन्दु, यो कृष्ण वर्ण मे पहचानो ॥४॥

वर्ण अशोक सम नीली का, हो चाप विहग के जैसे पर ।
वैडूर्य स्निग्ध सम वर्ण कहा, लेश्या नीली का है श्रुतधर ॥५॥

अलसी के पुष्प पख कोयल, एव कपोत की ग्रीवा ज्यो ।
होती है कापोती लेश्या, कापोत वर्ण जगती पर यो ॥६॥

हिगुल गैरिक नव उदित सूर्य, सम होती इसकी लाल प्रभा ।
तेजोलेश्या का वर्ण कहा, शुक तुण्ड समझलो दीप निभा ॥७॥

हरिताल और हल्दी खण्डित, सण और असन के कुसुम निभा ।
जगती मे अतिशय शुभ जानो, पद्मा लेश्या की पीत प्रभा ॥८॥

शख अकमणि कुन्द कुसुम, पयपूर की जैसे शुभ्र प्रभा ।
रजत हार सी धवल कान्ति, शुक्ला लेश्या है स्फटिक निभा ॥९॥

जैसे कटु तुम्बे का रस, कटु नीम रोहिणी रस जानो।
इनसे अनन्त गुण होता है, कृष्णा लेश्या का रस मानो ॥१०॥

त्रिकटु और गजपीपल का, तीखा रस जैसा होता है।
उससे भी अनन्त गुणा जानो, नीली लेश्या का लगता है ॥११॥

अपक्व आम्र तूवर कपित्थ, जैसा खट्टा रस होता है।
इससे भी अनन्त गुणा खट्टा, कापोती का रस लगता है ॥१२॥

परिपक्व आम्र या रसकपित्थ, जैसा खटमिट्ठा होता है।
इससे भी अनन्त गुणा जानो, तेजो का रस कप होता है ॥१३॥

विविधासव श्रेष्ठ सुरा जैसा, मधु-मैरेयक रस सम जानो।
होता है अनन्त गुणा इससे, पद्मा का मादक रस मानो ॥१४॥

जैसे खजूर द्राक्षा शक्कर, रस खाड क्षीर मधु होता है।
उससे भी अनन्त गुणा मीठा, शुक्ला का भी रस होता है ॥१५॥

जैसे मृत श्वान सर्प गौ की, तन-गध अशुभतर होती है।
उससे दुर्गन्धि अनन्त गुणी, तीनो पहली मे होती है ॥१६॥

जैसी सुगन्ध शुभ कुसुमो की, पीसे सुवास की जो होती।
उससे भी वढकर शुभ लेश्या, तीनो की गन्ध सुरभि होती ॥१७॥

करवत या जैसा शाक पत्र, गोजिह्वा कर्कश स्पर्श यथा।
उससे अनन्तगुण अप्रशस्त, लेश्या का होता स्पर्श तथा ॥१८॥

जैसे स्पर्श बूर का मृदु, मक्खन शिरीप[1] कोमल जानो।
उससे भी अमितगुण मृदुल-स्पर्श, शुभ लेश्याओ का है मानो ॥१९॥

नव तीन सत्ताईस इक्यासी, दो मौ तैंतालीस भेद यहाँ।
परिणाम कहे लेश्याओ के, होते ऐसे कई भेद यहाँ ॥२०॥

---

१ सिरीप—पुष्प।

पचास्रव मे लगा हुआ, और गुप्ति अगुप्त षट्तन अविरत।
सलग्न तीव्र आरम्भो मे, जो क्षुद्र साहसिक नर कलिरत ॥२१॥

परलोक भीति शका-विहीन, अजितेन्द्रिय निर्दय जो नर है।
इन सब योगो से युक्त कृष्ण, लेश्या मे होता रतिकर है ॥२२॥

अतपी अमर्षयुत ईर्ष्यालु, निर्लज्ज मूढ मायावी जो।
आसक्त द्वेषकारी प्रमत्त, रस लोलुप-शठ सुखस्वादी जो ॥२३॥

सलग्न सदा आरम्भो मे, है क्षुद्र साहसिक चित्त सदा।
इन सबमे युक्त नील लेश्या, मे परिणत होता है यदा-कदा ॥२४॥

जो वचन वक्र आचरण वक्र, और कपटी ऋजुता रहित मना।
परिकुचक मायी मिथ्यात्वी, जो अनार्यता मे रहे तना ॥२५॥

जो हास्य रसिक है दुर्वादी, तस्कर और मत्सर भाव धरे।
इन सब योगो से युक्त जीव, कापोती के परिणाम करे ॥२६॥

नम्रवृत्ति चापल्य - रहित, निर्मायी कुतूहल त्यागी है।
विनय भाव मे दक्ष दान्त, उपधानवान् शुभ योगी है ॥२७॥

जो प्रियधर्मी या दृढधर्मी, है पाप-भीरु शिव पथ गामी।
ऐसी प्रवृत्ति से युक्त जान, तेजोलेश्या का परिणामी ॥२८॥

है क्रोध मान जिसमे थोडा, और लोभ कपट भी अल्प जहाँ।
जो शान्त जितेन्द्रिय मन वाला, तप साधन मे शुभ योग वहाँ ॥२९॥

मितभाषी एव शान्त हृदय, दमितेन्द्रिय जग मे जो नर है।
ऐसी प्रवृत्ति मे युक्त मनुज, पद्मा लेश्या परिणत नर है ॥३०॥

जो आर्त रौद्र दो ध्यान छोड, है धर्म-शुक्ल धारण करता।
वह शान्तचित्त और दान्त समित, गुप्ति से मन गोपन करता ॥३१॥

रागी या गतराग जितेन्द्रिय, प्रशान्त जीवन जीते है।
ऐसी प्रवृत्ति से युक्त मनुज, शुक्ला लेश्या को धरते है ॥३२॥

सख्या - अतीत - सर्पिणीकाल, और उत्सर्पिणी के क्षण जितने।
अगणित लोको के क्षेत्राणु, लेश्या के स्थान कहे उतने ॥३३॥

अन्तर्मुहूर्त की न्यूनस्थिति, सागर तैंतीस मुहूर्ताधिक।
उत्कृष्ट वहाँ स्थिति होती है, कृष्णा लेश्या के जो नायक ॥३४॥

अन्तर्मुहूर्त की न्यूनस्थिति, दश सागर पल्यासख्य भाग।
ज्ञातव्य नील लेश्या की है, उत्कृष्ट स्थिति का यह विभाग ॥३५॥

अन्तर्मुहूर्त की न्यून स्थिति, त्रिसागर पल्यासख्य भाग।
जानो कापोती लेश्या का, उत्कृष्ट काल का यह विभाग ॥३६॥

अन्तर्मुहूर्त की न्यून स्थिति, दो सागर पल्यासख्य भाग।
तेजोलेश्या की होती है, उत्कृष्टस्थिति सुनलो धर राग ॥३७॥

अन्तर्मुहूर्त की न्यूनस्थिति, दश सागर मुहूर्त साधिक की।
उत्कृष्ट स्थिति यो होती है, पद्मा लेश्या के जीवन की ॥३८॥

अन्तर्मुहूर्त की न्यूनस्थिति, सागर तैंतीस मुहूर्ताधिक।
उत्कृष्ट स्थिति यो पाता है, शुक्ला लेश्या का अधिनायक ॥३९॥

सामान्य स्थिति यह लेश्या की, वतलायी जग मे जिनवर ने।
अव चारो गतियो मे कैसी, वतलाई सस्थिति प्रभुवर ने ॥४०॥

कापोत की दश सहस्र समा, न्यूनातिन्यून स्थिति होती है।
जल निधि त्रिक पल्यासख्य भाग, लेश्या प्राणी को रहती है ॥४१॥

जलनिधि त्रिक पल्यासख्यभाग, होती जघन्य स्थिति नीला की।
दशसागर पल्यासख्यभाग, उत्कृष्ट स्थिति इस लेश्या की ॥४२॥

तेजोलेश्या की परमस्थिति, समयाधिक जघन्य है पद्माकी ।
दश सागर ऊँची स्थिति होती, अन्तर्मुहूर्त साधिक उसकी ।।५४।।

पद्मा की स्थिति जो वतलाई, समयाधिक ऊँची वह मानो ।
शुक्ला की न्यून स्थिति वैसी, सागर तैंतीस[1] परम जानो ।।५५।।

कृष्ण नील कापोत तीन, ये अधर्म लेश्या कहलाती ।
तीनो ही लेश्या से जग मे, दुर्गति की प्राप्ति सदा होती ।।५६।।

तेज पद्म धवला तीनो, ये शुभ लेश्या कहलाती है ।
इन तीनो से वृत्ति जीव की, सुगति - प्रदायी होती है ।।५७।।

लेश्याओ की परिणति का, प्रथम समय जव आता है ।
ना किसी जीव का उस पल मे, उत्पाद भवान्तर होता है ।।५८।।

लेश्याओ की परिणति का, जब चरम समय रह जाता है ।
ना किसी जीव का उस पल मे, उत्पाद भवान्तर होता है ।।५९।।

अर्धमुहूर्त जब हो जावे, और शेप अर्ध रह जाता है ।
लेश्या की उस परिणति मे ही, जीव भवान्तर जाता है ।।६०।।

लेश्याओ के उन भागो को, यो जान विज्ञ जन ध्यान धरे ।
छोड अशुभ लेश्याओ को, शुभ लेश्या का सधान करे ।।६१।।

---

१ अन्तर्मुहुर्ताधिक तैंतीस सागर

त्रस स्थावर सूक्ष्म तथा वादर, जीवो की हिसा होती है।
गृहकार्य अत ना करने की, सयत की इच्छा होती है ॥९॥

ऐसे ही भोजन-पानी के, पाचन-धोवन मे वध होते।
अतएव जन्तु की दया हेतु, मुनि पाक करे ना करवाते ॥१०॥

है जल धान्याश्रित जीव कई, पृथ्वी और काष्ठाश्रित होते।
वे भक्त पान मे मरते है, यो जान भिक्षु ना पकवाते ॥११॥

प्रसरणशील सव ओर धार, वहु जीव विनाशक है पावक।
ना कभी जलाये भिक्षु अग्नि, है शस्त्र न अग्नि तुल्य घातक ॥१२॥

स्वर्ण रजत व्यवहार नही, भिक्षुक मन से ना चाह करे।
मणि कॉचन मिट्टी सम माने, क्रय विक्रय मे ना चित्त धरे ॥१३॥

क्रय करते क्रेता होता है, विक्रय से वणिक् कहा जाता।
क्रय विक्रय मे रहने वाला, वैसा न भिक्षु है कहलाता ॥१४॥

भिक्षा है योग्य, न क्रय करना, है भैक्ष्यवृत्ति भिक्षुक होता।
सुखदायी भिक्षा वृत्ति कही, क्रय विक्रय महादोप होता ॥१५॥

सामूहिक घर से स्वल्प स्वल्प, सूत्रानुसार निन्दा विरहित।
सन्तुष्ट अलाभ-लाभ मे हो, मुनि भोजनहित विचरे इच्छित ॥१६॥

रस मे लोलुपता गृद्धि नही, और स्वाद विजय मूर्छाविरहित।
ना स्वाद हेतु भोजन करता, निर्वाह हेतु खाता सयत ॥१७॥

अर्चना और रचना वन्दन, सत्कार मान ऋद्धि पूजन।
अभिलापा मन मे करे नही, मुनिता का करने को रक्षण ॥१८॥

३६ : जीवाजीव-वि क्ति

जीवाजीव के प्रविभागो को, एकाग्रचित्त हो श्रवण करे।
इन दोनो को जान श्रमण, सम्यक् सयम मे यत्न करे ॥१॥

है जीव और जड द्रव्य दूसरा, लोक यही जिन वतलाया।
है द्रव्य-अजीव का देश गगन, उसको अलोक प्रभु ने गाया ॥२॥

द्रव्य क्षेत्र और काल भाव से, वर्णन इनका होता है।
जड चेतन दो प्रमुख द्रव्य, जग का कारण कहलाता है ॥३॥

रूपी और अरूपी यो, दो भेद अजीव के होते है।
रूपी के है चार, अरूपी, दश प्रकार के होते है ॥४॥

धर्मास्तिकाय और देश तथा, प्रदेश भेद है वतलाया।
ऐसे अधर्म और देश तीसरा, उसका प्रदेश भी है गाया ॥५॥

नभ द्रव्य तथा है देश और, प्रदेश तीसरा वतलाये।
अद्धा काल एक यो मिलकर, भेद अरूपी दश गाये ॥६॥

धर्म, अधर्म-काय ये दोनो, लोक प्रमित वतलाये है।
लोकालोक गगनव्यापी, नरलोक काल कहलाये है ॥७॥

धर्म अधर्म और गगन द्रव्य, तीनो अनादि ये कहलाते।
सदा काल रहने से इनको, अन्त रहित है वतलाते ॥८॥

सन्तति को पाकर काल द्रव्य, ऐसे अनन्त कहलाता है।
स्थिति विशेप के कारण से, वह सादि सान्त भी होता है ॥९॥

स्कन्ध देश और तत्प्रदेश, परमाणु पृथक् कहलाता है।
रूपी पुद्गल के चार भेद, यो जिन शासन बतलाता है ॥१०॥

मिलने तथा पृथक् होने से, स्कन्ध और परमाणु बने।
सम्पूर्ण लोक या लोक देश, वैकल्पिक क्षेत्र कहा जिन ने ॥

अब काल विभाग कहूँ उनका, जो चार प्रकार सुनो आगे।
जिसको सुनकर साधक का मन, अध्यात्म साधना मे जागे ॥११॥

प्रचलित धारा की दृष्टि पकड, ना आदि अन्त उनका जानो।
स्थिति विशेष को लेकर के, है सादि-सान्त भी पहचानो ॥१२॥

असख्यकाल उत्कृष्ट कही, और एक समय की न्यूनस्थिति।
रूपी अजीवो की ऐसी, बतलाई सीमा काल स्थिति ॥१३॥

उत्कृष्ट अनन्ताकाल समझ, और एक समय का न्यून कहा।
रूप अजीव का अन्तर जग मे, बतलाया जिनदेव महा ॥१४॥

पुद्गल परिणति के पाँच भेद, श्री वीर प्रभु ने बतलाये।
वर्ण गध रस स्पर्श और, सठाण पाँच यो समझाये ॥१५॥

वर्ण भाव से परिणत पुद्गल, पाँच भेद मे बतलाये।
है कृष्ण नील लोहित व पीत, और धवल पच विध दर्शाये ॥१६॥

गन्ध भाव से परिणत पुद्गल, युगलरूप जग मे गाये।
सुरभि गन्ध और दुरभिगन्ध, परिणाम शास्त्र मे बतलाये ॥१७॥

स्वाद-भाव से परिणत पुद्गल, पाँच भेद जिन बतलाते।
तिक्त कटुक काषाय अम्ल, और मधुर पाँच यो कहलाते ॥१८॥

स्पर्श भाव से परिणत पुद्गल, आठ भेद कहलाते है।
कर्कश मृदुक और ऐसे ही, हल्के भारी होते है ॥१९॥

शीत उष्ण है स्पर्श और, चिकने-रूखे भी जग जाने।
यो स्पर्श भाव से परिणत पुद्गल, कहे शास्त्र मे मनमाने ।।२०।।

सस्थान-भाव-परिणत पुद्गल, पाँच भेद के वतलाये।
परिमण्डल वृत्त त्रिकोण तथा, आयत चतुरस्र यो कहलाये ।।२१।।

कृष्ण वर्ण का जो पुद्गल है, द्विविध गन्ध से भाज्य कहा।
स्पर्श और रस सस्थानो के, विविध भाव से वदल रहा ।।२२।।

नील वर्ण का जो पुद्गल, है द्विविध गन्ध से भाज्य कहा।
स्पर्श और रस सस्थानो के, विविध भाव से वदल रहा ।।२३।।

रक्त वर्ण का जो पुद्गल, है द्विविध गन्ध से भाज्य कहा।
स्पर्श और रस सस्थानो के, विविध भाव से वदल रहा ।।२४।।

पीत वर्ण का जो पुद्गल, द्विविध गन्ध से भाज्य कहा।
स्पर्श और रस सस्थानो के, विविध भाव मे वदल रहा ।।२५।।

श्वेत वर्ण का जो पुद्गल है, द्विविध गन्ध से भाज्य कहा।
स्पर्श और रस सस्थानो से, विविध भाव मे वदल रहा ।।२६।।

सुरभि गन्ध का जो है पुद्गल, वर्ण भाव से भाज्य कहा।
स्पर्श और रस सस्थानो से, विविध भाव मे वदल रहा ।।२७।।

अशुभ गन्धयुत जो पुद्गल है, वर्ण भाव से भाज्य कहा।
स्पर्श और रस सस्थानो से, विविध भाव मे वदल रहा ।।२८।।

तिक्त स्वाद का जो पुद्गल है, वर्ण भाव से भाज्य कहा।
स्पर्श गन्ध वा सस्थानो से, वह विविध भाव मे वदल रहा ।।२९।।

कटुक स्वाद का जो पुद्गल है, वर्ण भाव से भाज्य कहा।
स्पर्श गन्ध वा सस्थानो से, वह विविध भाव मे वदल रहा ।।३०।।

रस कपायमय जो पुद्गल है, वर्ण भाव से भाज्य कहा।
स्पर्श गन्ध वा सस्थानो के, वह विविध भाव मे वदल रहा ॥३१॥

खट्टे रस का जो पुद्गल है, वह वर्ण भाव से भाज्य कहा।
स्पर्श गन्ध सस्थानो मे, वह विध भावो मे वदल रहा ॥३२॥

मधुर स्वाद का जो पुद्गल है, वह वर्ण भाव से भाज्य कहा।
स्पर्श गन्ध सस्थानो से, वहुविध भावो मे वदल रहा ॥३३॥

कर्कश स्पर्श का जो पुद्गल है, वह वर्ण भाव से भाज्य कहा।
गन्ध और रस सस्थानो के, वहुविध भावो मे वदल रहा ॥३४॥

मृदुक स्पर्शमय जो पुद्गल है, वह वर्ण भाव से भाज्य कहा।
गन्ध और रस सस्थानो से, वहुविध भावो मे वदल रहा ॥३५॥

गुरुक स्पर्शमय जो पुद्गल है, वह वर्णभाव से भाज्य कहा।
गन्ध और रस सस्थानो के, वहुविध भावो मे वदल रहा ॥३६॥

स्पर्श लघुकमय जो पुद्गल, वह वर्ण भाव से भाज्य कहा।
गन्ध और रस सस्थानो से, वहुविध भावो मे वदल रहा ॥३७॥

शीत स्पर्शमय जो पुद्गल, वह वर्ण भाव से भाज्य कहा।
गन्ध और रस सस्थानो से, वहुविध भावो मे वदल रहा ॥३८॥

उष्ण स्पर्शमय जो पुद्गल, वह वर्ण भाव से भाज्य कहा।
गन्ध और रस सस्थानो से, वहुविध भावो मे वदल रहा ॥३९॥

स्निग्ध स्पर्शमय जो पुद्गल, वह वर्ण भाव से भाज्य कहा।
गन्ध और रस सस्थानो मे, वहुविध भावो मे वदल रहा ॥४०॥

स्पर्श रूक्षमय जो पुद्गल, वह वर्ण भाव से भाज्य कहा।
गन्ध और रस सस्थानो से, बहुविध भावो मे वदल रहा ॥४१॥

परिमडल आकार वस्तु, वह वर्ण भाव से भाज्य कहा।
गन्ध स्पर्श और रस भावो से, विविध भाव मे वदल रहा ॥४२॥

वृत्ताकार रूप जो पुद्गल, वह वर्ण भाव से भाज्य कहा।
स्पर्श गन्ध रस भावो से, विविध भेद जग जान रहा ॥४३॥

त्रिकोणाकृति का पुद्गल, वह वर्ण भाव से भाज्य कहा।
स्पर्श गन्ध रस भावो से, जग विविध रूप मे जान रहा ॥४४॥

चतुष्कोण आकृति वाला, है वर्ण भाव से भाज्य कहा।
स्पर्श गन्ध रस भावो से, जग विविध रूप मे जान रहा ॥४५॥

आयताकार जो है पुद्गल, वह वर्ण भाव से भाज्य कहा।
स्पर्श गन्ध रस भावो से, विविध रूप जग जान रहा ॥४६॥

यो अजीव के भेदो का, सक्षिप्त रूप से किया कथन।
अव जीव भेद का अनुक्रम से, करना है मुझको शुभ वर्णन ॥४७॥

द्विविध जीव है वतलाये, एक ससारी और सिद्ध अपर।
है विविध भेद से सिद्ध कहे, कहता हूँ सुनलो हो तत्पर ॥४८॥

स्त्री और पुरुप लिग से होते, है सिद्ध नपु सक भी होते।
जिन लिग तथा पर लिंग और, गृहि लिग सिद्ध भी हो जाते ॥४९॥

देहमान उत्कृष्ट और, मध्यम वा न्यूनमान होते।
ऊर्ध्व अधो वा तिर्यक् जग, सागर वा जल मे शिव पाते ॥५०॥

क्लीव लिग से दश होते, और वीस नारि तन से होते।
पुरुप लिंग से अष्टोत्तरशत, एक समय मे शिव जाते ॥५१॥

गृही चार पर-तीर्थ लिंग से, सिद्धि मिलाते दश नरवर।
है जैन लिंग से आठ अधिक, शत एक समय पाते शिवपुर ॥५२॥

उत्कृष्ट देहमान वाले, दो एक साथ शिवपद पाते।
है न्यून मान से चार और, मध्यम अष्टोत्तरशत होते ।।५३।।

ऊर्ध्व लोक से चार मिलाते, सिद्धि युगल सागर पाते।
जल मे तीन और भूतल मे, वीस मुक्ति को हे जाते ।।
अष्टोत्तर शत तिर्यग् भू मे, समय एक मे शिव पाते।
पाकर शिवपुर कभी न कोई, धराधाम मे है आते ।।५४।।

प्रतिहत होते कहाँ सिद्ध, और कहाँ प्रतिष्ठित है होते।
कहाँ छोडकर नर तन को, वे सिद्ध कहाँ जाकर होते ।।५५।।

होते अलोक मे प्रतिहत वे, लोकाग्र प्रतिष्ठित हो जाते।
जगती पर तन को छोड वहाँ, जाकर के शिवमय वन जाते ।।५६।।

वारह योजन मर्वार्थलोक के, ऊपर जाने पर आती है।
ईपत्प्राग्भारा नामा, भू छत्राकृति ज्यो होती है ।।५७।।

आयाम और है चौडाई, पैंतालीस योजन लक्ष सही।
होती है उससे तीन गुणी, परिधि आगम मे स्पष्ट कही ।।५८।।

योजन आठ मोटापायुत्, शिलामध्य मे वतलायी।
घटते-घटते चरमान्त मक्षिका, पर से पतली कहलायी ।।५९।।

उज्ज्वल स्वर्णमयी वह पृथ्वी, निर्मल स्वभाव से है होती।
उत्तान छत्र की आकृति मे, जिनवर वतलाई मनभाती ।।६०।।

शख, अक और कुन्द पुष्प सम, धवल विमल है शुभ्र प्रभा।
उस सीता नामा पृथ्वी से, योजन लोकान्त की है आभा ।।६१।।

योजन का उपरिम क्रोश एक, आकाश खण्ड जो होता है।
उस कोश के छट्ठे भाग क्षेत्र मे, अवगाह सिद्ध का होता है ।।६२।।

अचिन्त्य शक्तिधर सिद्ध वहाँ, लोकाग्र प्रतिष्ठित होते है।
भव दु ख प्रपच से मुक्त सिद्धि, वर परम श्रेष्ठ गति भजते है ॥६३॥

जिसकी जितनी हो ऊँचाई, अन्तिम भव मे मानुप तन की।
उतनी त्रिभाग कम सिद्धो की, सीमा नभ मे अवगाहन की ॥६४॥

एक सिद्ध सादिक होते, और अन्त कभी ना पाते है।
वहुत सिद्ध को लेकर वे, आद्यन्त रहित सव होते है ॥६५॥

है सिद्ध अरूपी जीव सघन, उपयुक्त ज्ञान और दर्शन मे।
अनुपम आत्मिक सुख को पाये, उपमा न कोई जिसकी जग मे ॥६६॥

लोकैकदेश मे वे सव है, दर्शन-सद् ज्ञान सहित जानो।
भवसागर पार पहुँच करके, वर सिद्धि प्राप्त उनको मानो ॥६७॥

ससारस्थ जीव जग भर मे, युगल भेद से वतलाये।
जगम स्थावर दो मूल भेद, स्थावर शिवनेत्र भेद गाये ॥६८॥

पृथ्वी जल और वनस्पति ये, है तीन भेद स्थावर के।
इन तीनो के अन्य भेद, सुन लो मेरे से मन धरके ॥६९॥

पृथ्वी कायिक है जीव द्विविध, एक सूक्ष्म दूसरा वादर है।
अपर्याप्त पर्याप्त भेद से, दो-दो होता फिर परिकर है ॥७०॥

वादर पृथ्वी पर्याप्त जीव के, युगल भेद श्रुत मे गाये।
एक मृदुल खर भेद दूसरा, मृदुल सप्तविध वतलाये ॥७१॥

कृष्ण नील और रक्त पीत, उज्ज्वल भूरी अति स्निग्ध धूल।
खर पृथ्वी के ऐसे ही, छत्तीस भेद है कहे स्थूल ॥७२॥

पृथ्वी और शर्करा वालु, उपल शिला मिट्टी खारी।
लोह ताम्र रागा शीशा, और स्वर्ण रजत हीरा भारी ॥७३॥

हरिताल हिंगलुक मन शिला, सस्यक अजन मूँगा जानो ।
अभ्र पटल और अभ्र वालु, ये वादर कायिक मणि मानो ॥७४॥

गोमेदक और रुचक अक, लोहिताक्ष मणि स्फटिक यथा ।
मरकत और मसारगल्ल, भुजमोचक इन्द्रनील तथा ॥७५॥

चन्दन गैरिक हसगर्भ, सौगान्धिक और पुलक जानो ।
वैडूर्य चन्द्रप्रभ वारिकात, है सूर्यकान्त ऐसे मानो ॥७६॥

ये खर पृथ्वी के मूल भेद, छत्तीस शास्त्र वतलाते है ।
है सूक्ष्म एकविध भेद नही, उसके श्रुतधर यो गाते है ॥७७॥

सूक्ष्म लोक मे व्याप्त कहे, और लोक देश मे वादर है ।
अव काल भेद चौविध कहता, वतलाया जैसा श्रुतधर है ॥७८॥

लेकर प्रवाह को सव प्राणी, आद्यन्त रहित भी होते है ।
ऐसे स्थिति को लेकर वे, साद्यन्त काल भी होते है ॥७९॥

वाईस सहस्र सवत्सर की, उत्कृष्ट आयु स्थिति होती है ।
पृथ्वीकायिक उन जीवो की, अन्तर्मुहूर्त कम वनती है ॥८०॥

असख्य काल उत्कृष्ट रहे, और जघन्य घटिका के भीतर ।
कायस्थिति पृथ्वी जीवो की, होती उस काया मे रहकर ॥८१॥

अनन्तकाल उत्कृष्ट रहे, और जघन्य घटिका के भीतर ।
पृथ्वीमय तन को तज प्राणी, रहता पर तन मे यह अन्तर ॥८२॥

वर्ण गन्ध रस और स्पर्श, सस्थान भेद से होते है ।
पृथ्वी जीवो के सहस्र भेद, जैनागम वतलाते है ॥८३॥

जलकायिक भी जीव जगत् मे, सूक्ष्म और वादर होते ।
अपर्याप्त पर्याप्त भेद से, ज्ञानी जन है वतलाते ॥८४॥

वादर-पर्याप्त जलकाय जीव, हैं पाँच भेद प्रभु ने गाये।
शुद्ध उदक और अवश्याय, हरतनु महिका हिम कहलाये ॥८५॥

सूक्ष्म एकविध भेद नही, उसमे आगम वतलाता है।
सम्पूर्ण लोक मे व्याप्त सूक्ष्म, वादर एकाश मे रहता है ॥८६॥

प्रवाह से वे सव प्राणी, आद्यन्त रहित भी होते है।
स्थिति को लेकर ये आदि सहित, और अन्त युक्त भी होते है ॥८७॥

सात सहस्र वर्षो की होती, उत्कृष्ट आयु जल जीवो की।
अन्तर्मुहूर्त की कम से कम, होती स्थिति वादर जीवो की ॥८८॥

उत्कृष्टा स्थिति असख्यकाल, स्थिति मुहूर्त भीतर न्यून कही।
जलकाय भाव को विन त्यागे, काय स्थिति इतनी मान्य रही ॥८९॥

अनन्तकाल का है अन्तर, उत्कृष्ट न्यून भीतर घटिका।
जलकाय भाव मे आने का, अन्तर इतना जल जीवो का ॥९०॥

वर्ण गन्ध रस और स्पर्श, सस्थान भाव से है जानो।
यो भेद विविध जल जीवो के, होते सहस्राधिक मानो ॥९१॥

है जीव वनस्पति युगल भेद, वादर वा सूक्ष्म कहे जाते।
अपर्याप्त पर्याप्त भेद, फिर इनके भी दो-दो होते ॥९२॥

बादर पर्याप्त वनस्पति के, दो भेद शास्त्र वतलाते है।
है एक साधारण तन वाले, प्रत्येक दूसरे होते है ॥९३॥

प्रत्येक शरीरी वनकायिक, नाना प्रकार के वतलाये।
तरु गुच्छ गुल्म एव लतिका, वल्ली तृण जग मे लहराये ॥९४॥

लता वलय पर्वज एव, भू-फोड कमल औषधि पाया।
हरितकाय तृण ये सव है, प्रत्येक शरीरी वनकाया ॥९५॥

साधारण के भी ऐसे, नाना प्रकार प्रभु बतलाते।
आलू मूलक और शृंगबेर, कई भेद अन्य ऐसे होते ॥९६॥

हिरली सिरिली सिस्सिरली, जावई कन्दली कन्द यथा।
कुस्तुम्बक प्याज लसुन ऐसे, कन्दली और भी कन्द तथा ॥९७॥

लोही स्तिहु और स्तिभु जानो, कुहक कन्द कहलाते हैं।
कृष्णकन्द और वज्रकन्द, ऐसे सूरण भी होते हैं ॥९८॥

हयकर्णी और सिहकर्ण सी, कन्द - मुसुण्डी कहलाती।
है भेद हरिद्रा आदि कई, साधारण काया में आती ॥९९॥

सूक्ष्म एकविध भेद नहीं, जिन आगम मे बतलाते है।
सम्पूर्ण लोक मे व्याप्त सूक्ष्म, बादर सर्वत्र न पाते है ॥१००॥

सन्तति दृष्ट्या वे सब प्राणी, आद्यन्त रहित भी होते है।
स्थिति को लेकर ये जग मे, आद्यन्त सहित हो जाते है ॥१०१॥

दस हजार परिमित वर्षों की, स्थिति उत्कृष्टा होती है।
वनकायिक की न्यूनस्थिति, अन्तर्मुहूर्त हो जाती है ॥१०२॥

उत्कृष्ट अनन्ताकाल और, अन्तर्मुहूर्त अति न्यून रही।
हरित काय को बिन त्यागे, कायस्थिति सोगे पनक मही ॥१०३॥

तेजो वायु और उदारतन, ये त्रिविध भेद त्रस जीवो के ।
मैं भेद वताऊँ आगम से, तुम श्रवण करो उन जीवो के ॥१०७॥

द्विविध जीव है तेज काय के, सूक्ष्म और वादर जानो ।
अपर्याप्त पर्याप्त भेद से, फिर दो-दो इनको मानो ॥१०८॥

वादर जो पर्याप्त तेज है, भेद अनेको वतलाये ।
अगारा मुर्मर अग्नि और, ज्वालार्चि रूप भी कहलाये ॥१०९॥

उल्का विद्युत् आदि अनेको, भेद अग्नि के कहलाये ।
सूक्ष्म एकविध भेद नही, उनके सूत्रो मे वतलाये ॥११०॥

सम्पूर्ण लोक मे व्याप्त सूक्ष्म, वादर सर्वत्र नही होते ।
अव कालविभागचतुर्विध उनका, कहूँ सूत्र जो वतलाते ॥१११॥

सन्तति की दृष्ट्या सव प्राणी, आद्यन्त रहित भी होते है ।
ऐसे ही स्थिति को लेकर, आद्यन्त सहित हो जाते है ॥११२॥

अन्तर्मुहूर्त की न्यूनस्थिति, तेजस्कायिक की होती है ।
उत्कृष्ट तीन दिन रात्रिमान, की आयु स्थिति हो जाती है ॥११३॥

असख्य कालपरिमिततेजस की, परम काय स्थिति होती है ।
अग्निकाय भव विन त्यागे, स्थितिन्यून मुहूर्त कम होती है ॥११४॥

अनन्त काल अन्तर होता, उत्कृष्ट न्यून घटिकार्ध मान ।
निज काय त्यागकर तेजस का, इतना अन्तर का काल जान ॥११५॥

वर्ण गन्ध रस और स्पर्श, सस्थान भाव से जो होते ।
तेजस्कायिक उन जीवो के, हैं भेद सहस्रो हो जाते ॥११६॥

है वायुकाय के द्विविध जीव, वादर और सूक्ष्म कायधारी ।
अपर्याप्त पर्याप्त भेद, इनके फिर होते प्रियकारी ॥११७॥

पर्याप्त तेज वादर कायिक, के पाँच भेद वतलाये है।
उत्कलिक मण्डलिक शुद्ध वायु, घन गुजवात कहलाये है ॥११८॥

सवर्तक वायु पचम है, ऐसे ही भेद अनेक कहे।
है सूक्ष्म एकविध भेद नही, सारे जग मे जो फैल रहे ॥११९॥

सम्पूर्ण लोक मे व्याप्त सूक्ष्म, सर्वत्र नही वादर होते।
अव काल भेद चौविध उनका, कहूँ सूत्र जो वतलाते ॥१२०॥

सन्तति की दृष्ट्या वे प्राणी, आद्यन्त रहित हो जाते है।
ऐसी ही स्थिति को लेकर सव, साद्यन्त काल से होते है ॥१२१॥

वायुकाय के जीवो की, त्रिसहस्र वर्ष की स्थिति होती।
उत्कृष्ट और है न्यूनस्थिति, भीतर मुहूर्त के रह जाती ॥१२२॥

असख्य काल परिमित वायु, की परमकाय स्थिति होता है।
वायु काय को विन त्यागे, स्थितिन्यून मुहूर्त कम होती है ॥१२३॥

अनन्त काल अन्तर होता, उत्कृष्ट न्यून घटिकार्थ जान।
तज स्वीयकाय फिर पाने मे, वायु का अन्तर ऐसा मान ॥१२४॥

वर्ण गन्ध रस और स्पर्श, सस्थान भेद से जो होते।
वायुकाय उन जीवो के, है भेद सहस्रो हो जाते ॥१२५॥

ऐसे उदार जो त्रस प्राणी, वे चार प्रकार कहे जाते।
द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय अन्तिम कहलाते ॥१२६॥

दो इन्द्रिय जो जीव जगत् मे, वे भेद युगल कहलाते है।
अपर्याप्त पर्याप्त सुनो, उनके भेदो को कहते है ॥१२७॥

कृमि सोमगल और अलस, यो ही मातृवाहक होते।
वासीमुख शुक्ति शख एव, शन्खानक भेद विविध होते ॥१२८॥

पल्लोय अणुल्लक तथा, यहाँ जो प्राप्त वराटक होते हे ।
जालक जलौक और चन्दनियाँ, के रूप जीव कई होते है ॥१२९॥

इस तरह अनेको भेद यहाँ, द्वीन्द्रिय प्राणी के होते है ।
सम्पूर्ण लोक मे व्याप्त नही, ये एक भाग मे होते है ॥१३०॥

सन्तति दृष्ट्या वे सव प्राणी, आद्यन्त रहित हो जाते है ।
स्थिति को लेकर वे ऐसे ही, आद्यन्त सहित भी होते है ॥१३१॥

वाहर वर्ष की उत्कृष्ट स्थिति, वतलाई द्वीन्द्रिय प्राणी की ।
अन्तर्मुहूर्त का न्यून काल, विन त्यागे होती उस भव की ॥१३२॥

सख्येय काल है परम स्थिति, अति न्यूनमुहूर्त के भीतर की ।
विन त्यागे वेइन्द्रिय भव को, कायस्थिति द्वीन्द्रिय जीवो की ॥१३३॥

अनन्तकाल अन्तर होता, अन्तर्मुहूर्त अतिन्यून कहा ।
वेइन्द्रिय जीवो का इतना, परकाय भ्रमण का काल रहा ॥१३४॥

वर्ण गन्ध रस स्पर्श और, सस्थान भाव से कहलाते ।
वेइन्द्रिय जीवो के जग मे, यो भेद सहस्रो हो जाते ॥१३५॥

होते जो त्रीन्द्रिय जीव यहाँ, वे द्विविध शास्त्र मे वतलाये ।
अपर्याप्त पर्याप्त भेद को, सुनो शास्त्र मे यो गाये ॥१३६॥

कुथु पिपीलिका या खटमल, मकडी दीमक और तृणखादक ।
काष्ठाहार तथा मालुक, यो त्रीन्द्रिय, जान पत्र भक्षक ॥१३७॥

कार्पासास्थि मिज तिन्दुक, ऐसे ही कर्णखजूर जानो ।
शतावरी और इन्द्रकाय, जग मे त्रीन्द्रिय प्राणी मानो ॥१३८॥

इन्द्रगोप आदिक अनेक, है भेद त्रि-इन्द्रिय प्राणी के ।
सम्पूर्ण लोक मे रहे नही, एकाग्र वसे वे त्रिभुवन के ॥१३९॥

सन्तति की दृष्ट्या ये प्राणी, आद्यन्त रहित हो जाते हैं।
ऐसे ही स्थिति को लेकर वे, आद्यन्त सहित भी होते हैं ।।१४०।।

उनपचासमित अहोरात्र, उत्कृष्ट मान है जीवन का।
त्रि-इन्द्रिय जीवो का जघन्य, अन्तर्मुहूर्त आयु भव का ।।१४१।।

सख्येयकाल उत्कृष्ट स्थिति, है न्यून मुहूर्त के भीतर की।
विन त्यागे त्रीन्द्रिय जीवन को, काय स्थिति है उन जीवो की ।।१४२।।

अनन्तकाल अन्तर होता, उत्कृष्ट न्यून घटिकार्ध मान।
निजकाय त्याग त्रि-इन्द्रिय का, इतना है अन्तर काल जान ।।१४३।।

वर्ण गन्ध रस स्पर्श और, सस्थान भाव से जो होते।
त्रि-इन्द्रिय जीवो के ऐसे, यो भेद सहस्रो हो जाते ।।१४४।।

चतुरिन्द्रिय जो जीव जगत् के, युगल भेद वतलाये है।
अपर्याप्त पर्याप्त सुनो, क्या भेद शास्त्र मे गाये है ।।१४५।।

अन्धिका पोत्तिका और मक्षिका, मशक दश भी कहलाते।
भ्रमर पतगा और कीट, ढिकुण कुकण यो वतलाते ।।१४६।।

कुक्कुड सिंगरिडी नद्यवर्त, वृश्चिक भृगारी डोल तथा।
विरली चउरिन्द्रिय अक्षिवेध, होती विकलेन्द्रिय जीव कथा ।।१४७।।

अक्षिल मागध अक्षिरोड है, चित्र-विचित्र पखो वाले।
ओहिजलिया जलकारी, यो नियय तवकायिक पाले ।।१४८।।

एसे चतुरिन्द्रिय जीव अनेको, भेद जगत् मे होते है।
एकाग्र लोक मे वे प्राणी, होते यो शास्त्र सुनाते है ।।१४९।।

सन्तति की दृष्ट्या वे प्राणी, आद्यन्त रहित हो जाते है।
ऐसे ही स्थिति को लेकर वे आद्यन्त सहित भी होते है ।।१५०।।

छ मास काल की वतलायी, उत्कृष्ट आयु इन जीवो की।
अन्तर्मुहूर्त न्यून सीमा, है चतुरिन्द्रिय भव वालो की ।।१५१।।

सख्येय काल की परमस्थिति, अति न्यून मुहूर्त के भीतर की।
चतुरिन्द्रिय भव को विनत्यागे, कायस्थिति है इन जीवो की ।।१५२।।

उत्कृष्ट अनन्ताकाल कहा, अन्तर्मुहूर्त कम होता है।
चतुरिन्द्रिय तन फिर पाने मे, अन्तर इतना हो जाता है ।।१५३।।

वर्ण गन्ध रस स्पर्श और, सस्थान भाव से जो होते।
चतुरिन्द्रिय जीवो के ऐसे, ये भेद सहस्रो हो जाते ।।१५४।।

पचेन्द्रिय जीवो के जग मे, चार भेद वतलाये है।
नारक तिर्यक् और मनुज देव, ये चार रूप कहलाते है ।।१५५।।

है नैरयिको के सात भेद, सातो पृथ्वी मे होते है।
जो रत्नाभा शर्करा वालुका, प्रभा भूमि कहलाते है ।।१५६।।

पकाभा एव धूमाभा, तमा तमस्तम सप्तम है।
ऐसे निरयो के सात भेद, ये वतलाते जिन आगम है ।।१५७।।

लोकैकदेश मे निरयवास के, जीव सभी कहलाते है।
अव काल भेद उनके चौविध, जो है उनको वतलाते है ।।१५८।।

सन्तति दृष्ट्या वे सव प्राणी, आद्यन्त रहित हो जाते है।
ऐसे ही स्थिति को लेकर वे, आद्यन्त सहित भी होते है ।।१५९।।

सागर एक की उपमा का, उत्कृष्ट काल है वतलाया।
पहली पृथ्वी मे न्यून काल, दशसहस्र वत्सर कहलाया ।।१६०।।

है तीन सागरोपम आयु, उत्कृष्ट दूसरी पृथ्वी की।
जघन्य सागर एक कही, नारक-पृथ्वी के प्राणी की ।।१६१।।

है सागर सात परम जीवन, उत्कृष्ट तीसरी पृथ्वी का।
जघन्य सागर तीन कहा, ऐसे उन नारक प्राणी का ॥१६२॥

सागर दश की उपमा वाली, उत्कृष्ट आयु है बतलायी।
चौथी पृथ्वी का जघन्यतम, है सागर सात आयु गायी ॥१६३॥

सतरह सागर की उपमा की, उत्कृष्ट आयु है बतलायी।
पचम पृथ्वी की जघन्यतम, दश सागर आयु कहलायी ॥१६४॥

बाईस सागरोपम परिमित, उत्कृष्ट आयु है बतलायी।
छट्ठी पृथ्वी मे न्यून स्थिति, सागर सत्रह की समझायी ॥१६५॥

सागर तैंतीस की परम आयु, सप्तम पृथ्वी की बतलायी।
न्यूनातिन्यून है आयुस्थिति, सागर बाईस की समझायी ॥१६६॥

जो ही आयु स्थिति बतलाई, निरय स्थल के उन जीवो की।
होती जघन्य उत्कृष्ट तथा, वो ही कायस्थिति भी उनकी ॥१६७॥

उत्कृष्ट अनन्ताकाल कहा, अन्तर्मुहूर्त अति न्यूनान्तर।
नारक तन तज फिर पाने मे, इतना होता है कालान्तर ॥१६८॥

वर्ण गन्ध रस स्पर्श और, सस्थान भाव से हो जाते।
चतुरिन्द्रिय जीवो के ऐसे, भेद सहस्रो बन जाते ॥१६९॥

पचेन्द्रिय तिर्यञ्च् जगत मे, युगल भेद से बतलाये।
सम्मूर्छिम तिर्यच एक, गर्भज है अन्य गए गाये ॥१७०॥

इन दोनो के है तीन भेद, जलचर-थलचर व नभचारी।
उनके भी भेद सुनो मुझसे, होते है जैसे विस्तारी ॥१७१॥

मत्स्य कच्छ ग्रह मकर भेद, ये चार प्रकार गए गाए।
सुसुमार है भेद पाँचवाँ, जलचर क्रम यो बतलाए ॥१७२॥

लोकैकभाग मे ये सब है, सर्वत्र नही वे होते है ।
अब काल विभाग कहूँ उनका, जो चार भेद से होते है ॥१७३॥

सन्तति दृष्ट्या वे सब प्राणी, आद्यन्त रहित हो जाते है ।
ऐसे ही स्थिति को लेकर ये, आद्यन्त सहित भी होते है ॥१७४॥

आयु स्थिति होती क्रोड पूर्व, उत्कृष्ट पचेन्द्रिय जलचर की ।
होती जघन्यत वह आयु, अन्तर्मुहूर्त उन जीवो की ॥१७५॥

क्रोड पूर्व प्रत्येक परमस्थिति, जलचर की बतलाई है ।
कायस्थिति ऐसे न्यून वहाँ, अन्तर्मुहूर्त की गाई है ॥१७६॥

होता जघन्यत कालान्तर, अन्तर्मुहूर्त उन जीवो का ।
अनन्तकाल से फिर पाते, जलचर तन अन्तर है उनका ॥१७७॥

वर्ण गन्ध रस और स्पर्श, सस्थान भाव से हो जाते ।
जलचर पचेन्द्रिय जीवो के, यो भेद सहस्रो बन जाते ॥१७८॥

चौपाये परिसर्प और, स्थलचर दो जग मे है होते ।
चौपायो के है चार भेद, उनको सुनलो मुझसे कहते ॥१७९॥

होते एक खुर और द्विखुर, गण्डीपद नखपद कई होते ।
हय-आदि गवादि गज आदि, सिंहादिक नखधर कहलाते ॥१८०॥

भुज और उरग परिसर्प युगल, परिसर्प भेद कहलाते है ।
गोधा आदिक और सर्पादिक, प्रत्येक बहुलविध होते है ॥१८१॥

लोकैकभाग मे वे सब है, सम्पूर्णलोक मे व्याप्त नही ।
मै करूँ चतुर्विध काल भेद का, वर्णन उनका पूर्ण सही ॥१८२॥

सन्तति दृष्ट्या वे सब प्राणी, आद्यन्त रहित हो जाते है ।
ऐसे ही स्थिति को लेकर वे, आद्यन्त सहित भी होते है ॥१८३॥

पल्योपम तीन की स्थिति होती, उत्कृष्ट शास्त्र वतलाता है।
स्थलचर जीवो का आयु काल, अन्तर्मुहूर्त कम होता है ॥१८४॥

तीन पल्य की उपमा से, उत्कृष्ट कायस्थिति होती हे।
कोटिपूर्व प्रत्येक सहित, अतिन्यून मुहूर्त कम होती है ॥१८५॥

स्थलचर जीवो की कायस्थिति, अन्तर उनका यह होता है।
उत्कृष्ट अनन्ताकाल और, भीतर मुहूर्त कम रहता है ॥१८६॥

वर्ण गन्ध रस और स्पर्श, सस्थान भाव मे हो जाते।
स्थलचर पचेन्द्रिय् जीवो के, यो भेद महस्रो वन जाते ॥१८७॥

चर्मपक्षी और रोमपक्षी, समुद्ग तीसरे खग होते।
होते है वितत-पक्षयुत् भी, यो चउविध खेचर हो जाते ॥१८८॥

सम्पूर्ण लोक मे व्याप्त नही, लोकैक भाग मे वे होते।
मै करूँ चतुर्विध काल भेद, वर्णन जो श्रुतधर वतलाते ॥१८९॥

सन्तति दृष्ट्या वे सव प्राणी, आद्यन्त रहित हो जाते है।
ऐसे ही स्थिति को लेकर के, आद्यन्त सहित कहलाते है ॥१९०॥

है असख्यतम भाग पल्य का, खेचर जीवो का आयुमान।
अन्तर्मुहूर्त का कम से कम, होता जीवन का काल मान ॥१९१॥

पल्योपम का असख्य भाग, उत्कृष्ट कायस्थिति वतलाई।
है पूर्वकोटि प्रत्येक सहित, अन्तर्मुहूर्त लघु कहलाई ॥१९२॥

खग की कायस्थिति वतलाई, अन्तर उनका है यह होता।
उत्कृष्ट अनन्त काल पीछे, फिर खग भव मे आना होता ॥१९३॥

वर्ण गन्ध रस और स्पर्श, सस्थान भाव से होते है।
खेचर पचेन्द्रिय जीवो के, यो भेद सहस्रो होते है ॥१९४॥

मनुज भेद दो होते है, उनको मै कहता सुन लेना ।
सम्मूर्छिम एव गर्भ जन्म, यो मुख्य भेद वतला देना ।।१६५।।

गर्भविक्रान्त मानव प्राणी, के तीन भेद वतलाये है ।
भोगभूमि और कर्मभूमि, अन्तरद्वीपज कहलाये है ।।१६६।।

पन्द्रह कर्मधरा के नर, और तीस अकर्म भू के होते ।
द्वीपज के दो भेद अठाईस, उनकी सख्या श्रुतधर गाते ।।१६७।

सम्मूर्छिम मनुजो के ये ही, है भेद शास्त्र मे वतलाये ।
सम्पूर्ण लोक मे व्याप्त नही, लोकैक भाग मे कहलाये ।।१६८।।

सन्तति दृष्ट्या वे सव प्राणी, आद्यन्त रहित हो जाते है ।
ऐसे ही स्थिति को लेकर वे, आद्यन्त सहित भी होते है ।।१६६।।

तीन पल्य परिमित आयु, उत्कृष्ट मनुज की वतलाई ।
न्यूनातिन्यून अवधि उनकी, अन्तर्मुहूर्त की समझाई ।।२००।।

तीन पल्य पर कोटि पूर्व, प्रत्येक काय स्थिति होती है ।
न्यूनावधि नर जीवन की, अन्तर्मुहूर्त रह जाती है ।।२०१।।

मनुज भाव की कायस्थिति, वतलाई अन्तर यह होता ।
अन्तर्मुहूर्त होता जघन्य और, अनन्त काल अति हो जाता ।।२०२।।

वर्ण गन्ध रस स्पर्श और, सस्थान भाव से हो जाते ।
मानव जीवो से इस जग मे, यो भेद सहस्रो वन जाते ।।२०३।।

देव चतुर्विध कहलाये, सुन लेना उनको मै कहता ।
भौमेय और व्यन्तर ज्योपित, वैमानिक चौथा सुर होता ।।२०४।।

देव-भवनवासी दसविध, व्यन्तर के आठ भेद होते ।
ज्योतिष्क देव के पाँच भेद, वैमानिक युगविध वतलाते ।।२०५।।

असुर नाग एव सुपर्ण, विद्युत् पावक कहलाये है।
द्वीपोदधि दिक् पवन स्तनित, ये भवनदेव वतलाये है ।।२०६।।

पिशाच भूत और यक्ष रक्ष, किन्नर एव किपुरुप तथा।
गन्धर्व महोरग होते है, वनचारी अष्टप्रकार यथा ।।२०७।।

चन्द्र सूर्य नक्षत्र और, ग्रह तारक पचम होते है।
स्थित और चलित ये ज्योतिर्धर, यो पॉच भेद के होते है ।।२०८।।

वैमानिक जो सुर होते है, वे द्विविध लोक मे कहलाते।
कल्पोपग कल्पातीत मुख्य, यो भोग जीव श्रुतधर गाते ।।२०९।।

वारह कल्पोपग होते है, सौधर्म और ईशान तथा।
सनत्कुमार माहेन्द्र व्रह्म, लान्तक छट्ठे की शुक्ल कथा ।।२१०।।

महाशुक्र और सहस्रार, आनत प्राणत सुरलोक तथा।
आरण और अच्युत लोक कल्प-वासी सुर वारह भेद यथा ।।२११।।

कल्पातीत देव जो होते, वे युगल भेद कहलाते है।
ग्रैवेय अनुत्तर अल्पविकृति, ग्रैवेयक नौ विध होते है ।।२१२।।

हेट्ठिम-हेट्ठिमहेट्ठिम मध्यम, अधस्तनोपरितन होते।
चतुर्थ मध्यम का हेट्ठिम, मध्यम-मध्यम फिर कहलाते ।।२१३।।

मध्यम-उपरिम है पष्ठ भेद, सप्तम उपरिम-हेट्ठिम जानो।
अष्टम उपरिम का मध्य भेद, उपरिम-उपरिम नवमा मानो ।।२१४।।

ये ग्रैवेयक सुर नव विध होते, ग्रीवास्थल पर इस जगती के।
वैजयत जयत विजय अपराजित, सुख भोगे निज करणी के ।।२१५।।

सर्वोच्च सुखी सर्वार्थसिद्ध, ये पाँच अनुत्तर सुर होते।
ये सव वैमानिक देव विविध, परमोन्नत पद पर स्थिर रहते ।।२१६।।

लोकैकदेश मे वे रहते, स्वर्गीय परम सुख के भागी।
मै करू चतुर्विधकाल भाग मे, उनका वर्णन यश भागी ॥२१७॥

सन्तति की दृष्ट्या ये सुरगण, आद्यन्तरहित हो जाते है।
ऐसे ही स्थिति को लेकर वे, आद्यन्त रहित भी होते है ॥२१८॥

होती साधिक एक उदधि, उत्कृष्ट आयु भौमेयो की।
दश सहस्र वत्सर की जघन्य, कालावधि उनके जीवन की ॥२१९॥

व्यन्तर देवो की न्यूनस्थिति, दश सहस्र वत्सर होती है।
उत्कृष्ट एक पल्योपम की, कालावधि उनकी होती है ॥२२०॥

उत्कृष्ट पल्य और लाख वर्ष, परमा स्थिति ज्योतिर्धर सुर की।
पल्योपम अष्टाश आयु स्थिति, होती जघन्य उन देवो की ॥२२१॥

सौधर्म देवकी आयु स्थिति, होती जघन्य पल्योपम की।
उत्कृष्ट रूप से वतलाई, कालावधि दो सागर की ॥२२२॥

साधिक सागर दो की आयु, उत्कृष्ट रूप से वतलायी।
ईशानकल्प मे न्यून आयु, साधिक पल्योपम समझायी ॥२२३॥

उदधि सात परिमाण आयु, उत्कृष्ट रूप से वतलायी।
सनत्कुमार मे दो सागर, न्यूनस्थिति आयु समझायी ॥२२४॥

साधिक सागर सात आयु, उत्कृष्ट काल है वतलाया।
माहेन्द्र कल्प मे दो सागर, साधिक जघन्य भी समझाया ॥२२५॥

दश सागर परिमित होती है, उत्कृष्ट ब्रह्मवासी सुर की।
है सागर सात जघन्य आयु, वतलायी श्रुत मे पचम की ॥२२६॥

सागर चौदह की वतलायी, उत्कृष्ट आयु लान्तक सुरकी।
एव जघन्य दश सागर की, होती है जीवनायु उनकी ॥२२७॥

सतरह सागर की बतलायी, उत्कृष्ट आयु सुर सप्तम की।
महाशुक्र की न्यून आयु, होती है चौदह सागर की ॥२२८॥

अट्ठारह सागर बतलायी, उत्कृष्ट आयु अष्टम सुर की।
सहस्रार मे न्यून रूप वह, होती सतरह सागर की ॥२२९॥

उन्नीस सागरोपम होती, उत्कृष्ट आयुस्थिति आनतकी।
अट्ठारह सागर की जानो, अतिन्यून स्थिति सुरजीवनकी ॥२३०॥

उत्कृष्ट वीस सागर जानो, प्राणत सुरभव का आयुमान।
सागर उन्नीस का होता है, अतिन्यून आयु प्राणत का मान ॥२३१॥

सागर इक्कीस की होती है, उत्कृष्ट आयु आरण सुर की।
उदधि वीस की न्यून आयु, होती इग्यारह सुरपुर की ॥२३२॥

सागर वाईस की बतलायी, उत्कृष्ट आयु अच्युत सुर की।
इक्कीस सागरोपम की है, अतिन्यून आयु सुर जीवन की ॥२३३॥

सागर तेईस की बतलायी, उत्कृष्ट प्रथम ग्रैवेयक की।
सागर वाईस न्यून जानो, उस ग्रैवेयक के जीवन की ॥२३४॥

है कालमान चौबीस उदधि, उत्कृष्ट द्वितीय ग्रैवेयक की।
होता है न्यून तेईस सागर, उसमे वसने वाले सुर का ॥२३५॥

सागर पच्चीस का कालमान, उत्कृष्ट तृतीय ग्रैवेयक का।
सागर चौवीस न्यून होता, उसमे बसने वाले सुर का ॥२३६॥

सागर छब्वीस का कालमान, उत्कृष्ट चतुर्थ ग्रैवेयक का।
सागर पच्चीस न्यून होता, उसमे वसने वाले सुर का ॥२३७॥

सागर सत्ताईस आयुस्थिति, पचम ग्रैवेयक मे होती।
सागर छब्वीस न्यून जानो, उनकी यह आयु स्थिति होती ॥२३८॥

सागर अट्ठाईस-कालमान, उत्कृष्ट पष्ठ ग्रैवेयक का।
सागर सत्ताईस का जघन्य, उसमे वसने वाले सुर का ।।२३६।।

सागर उनतीस का कालमान, उत्कृष्ट सप्त ग्रैवेयक का।
सागर अट्ठाईस का जघन्य, उसमे वसने वाले सुर का ।।२४०।।

उत्कृष्ट तीस सागर जानो, अष्टम ग्रैवेयक आयुमान।
उनतीस मागरोपम होता, अतिन्यूनआयु लो उनका जान ।।२४१।।

सागर इकतीम का कालमान, उत्कृष्ट नवम ग्रैवेयक का।
होता है न्यून तीस सागर, उसमे वसने वाले सुर का ।।२४२।।

सागर तैतीस का आयुमान, उत्कृष्ट रूप विजयादिक का।
और चारो लोको मे इकतीस, सागर है न्यून कहा सुर का ।।२४३।।

ना न्यूनाधिक का आयुमान, सागर तैतीस का वतलाया।
महाविमान सर्वार्थसिद्ध का, कालमान प्रभु ने गाया ।।२४४।।

जितनी होती है आयु स्थिति, सुर भव मे सारे देवो की।
वही न्यून उत्कृष्ट कही, कायस्थिति भी उन अमरो की ।।२४५।।

होता जघन्यत कालान्तर, अन्तर्मुहूर्त उन जीवो का।
उत्कृष्ट अनन्त काल होता, अन्तर सुर भव मे आने का ।।२४६।।

वर्ण गन्ध रस स्पर्श और, सस्थान भाव से हो जाते।
स्वर्गलोक के देवो मे यो, भेद सहस्रो वन जाते ।।२४७।।

ससारी और सिद्ध भेद से, ये जीव युगल कहलाते है।
होते अजीव के युगल भेद, जो मूर्तामूर्त कहाते है ।।२४८।।

यो जीव अजीवो का वर्णन, सुन मन मे शुभ श्रद्धान करे।
मव नय-सम्मत-पथ रमण करे, मयम से सुस्थिर चित्त धरे ।।२४९।।

वर्षों तक फिर श्रमण धर्म का, विमल भाव से पालन कर ।
शास्त्र कथित क्रमसे आत्मा को, सलेखन से हल्का कर ।।२५०।।

बारह वर्षो की उत्कृष्टा, सलेखा श्रुत मे बतलाई ।
मध्यम सवत्सर की होती, छ मास जघन्या कहलाई ।।२५१।।

वर्ष चतुष्टय पहले मे, विकृतिओ का वर्जन करले ।
फिर द्वितीय वर्ष चतुष्टय मे, नानाविध तप साधन करले ।।२५२।।

फिर दो वर्षो तक एकान्तर, पारण के दिन आचाम्ल करे ।
वर्ष एकादश से छ महिने, अति विकृष्ट तप नही करे ।।२५३।।

पिछले छ महिनो मे साधक, फिर विकृष्ट तप ग्रहण करे ।
परिमित आचाम्ल करे धारण, यो सवत्सर भर कार्य करे ।।२५४।।

बारहवे वर्ष के आने पर, मुनिकोटि सहित आचाम्ल करे ।
फिर पक्ष मास जो भी चाहे, अनशन व्रत को स्वीकार करे ।।२५५।।

कान्दर्पी एव अभियोगी, किल्विषी मोह या भाव असुर ।
विराधना के कारण से, दुर्गति होती है मरने पर ।।२५६।।

मिथ्यादर्शन मे लीन और, सनिदान हिंस्र-जन जो मरते ।
होती है दुर्लभबोधि उन्हे, जो जन इन भावो मे रहते ।।२५७।।

सम्यक्त्वलीन अनिदान और, उज्ज्वल लेश्या के सहचारी ।
मरते जो ऐसे भावो मे, वे सुलभबोधि के अधिकारी ।।२५८।।

मिथ्यादर्शन मे लीन जीव, सनिदान कृष्ण लेश्याधारी ।
ऐसे भावो मे जो मरते, है दुर्लभ-बोधि उन्हे भारी ।।२५९।।

जिनवाणी मे अनुरक्त तथा, जो जिन वचनो पर चलते है ।
निमल क्लेश रहित हो वे, सीमित भवसागर रहते है ।।२६०।।

वालमरण कई वार किये, अज्ञानमरण भी कई पाये ।
जो जिन-वचनो के अज्ञानी, मर मर भव वन गोता खाये ॥२६१॥

विविध शास्त्र के जो ज्ञाता, गुणग्राही जो असमाधि हरे ।
उपरोक्त गुणो मे युक्त योग्य, आलोचन सुन मन ग्रहण करे ॥२६२॥

कन्दर्प कुचेष्टा और शील, सद्भाव हास्य उपहास कथा ।
पर जनमन को विस्मित करता, कन्दर्प भावरत रहे वृथा ॥२६३॥

मत्र योग करके जग मे, जो भूमि कर्म उपयोग करे ।
सातारसर्द्धि के हेतु करे, अभियोग भाव को प्राप्त करे ॥२६४॥

ज्ञान केवली धर्मगुरु, और मघ चतुर्विध दोप कहे ।
मायी अवर्णवादी एव, किल्विपी देव अपमान सहे ॥२६५॥

जो क्रोध भाव की वृद्धि करे, और व्यर्थ निमित्तक वचन करे ।
महिमावर्द्धक इन कामो से, आसुरी भाव को प्राप्त करे ॥२६६॥

शस्त्र ग्रहण या विप भक्षण, पावक जल से तन नाश करे ।
जो अनाचार सेवन करता, वह जन्म मरण की वृद्धि करे ॥२६७॥

ज्ञातपुत्र निर्वृत ज्ञानी, प्रभु ने यो तत्त्व विचार किया ।
पट्त्रिश श्रेष्ठ अध्ययनो का, भवसिद्धिक सम्मत ज्ञान दिया ॥२६८॥

शुद्धि-पत्र

अध्ययन	पृष्ठ	पद	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	३	३	१	जा	ना
१	३	५	१	सुअर	सूअर
१	४	१६	१	ना	न
१	५	२३	१	सुविनीति	सुविनीत
२	८	४	१	तृष्णा	तृषा
२	११	३८	२	मोते	सोने
२	११	३६	२	मनि	मुनि
७	२४	१३	२	दुमेधा	दुर्मेधा
८	२६	६	२	व्रती	व्रती
८	२७	१०	२	काम	काय
८	२७	११	१	साध	साधु
६	३२	४८	२	नल	नभ
६	३२	५१	२	तुम	सम
१०	२६	२३	२	तोर	तेरा
१०	३६	२६	२	रहै	रहे
१०	३७	२८	२	निलिप्त	निर्लिप्त
१०	३७	३६	२	सवर्धन	सवर्धन
१२	४२	५	१	मन्त	मत्त
१२	४३	१२	१	व्रोते	व्रोते
१२	४४	२०	२	छात्रो	छात्रो
१२	४५	३१	२	हाती	होती
१२	४७	३६	१	घन	धन
१३	४८	१०	२	शभ	शुभ

अध्ययन	पृष्ठ	पद	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१३	४८	११	१	शेम	शुभ
१४	५२	१२	१	० त्राण	न त्राण
१४	५२	१४	१	अनिवृत्त	अनिवृत्त
१४	५३	२६	२	ठडा	ठूंठा
१४	५४	३०	२	व्यक्त	त्यक्त
१५	५७	४	२	दृष्ट	हृष्ट
१६	६१	५	४	तारी	नारी
१६	६३	६	३	भोलन	भोजन
१६	६४	११	४	धर्म	धर्म को
१६	६५	३	२	सुनि	मुनि
१७	६८	१२	२	युक्त	युत्
१८	७०	१६	२	दृष्ट	हृष्ट
१८	७२	३५	१	कारत	भारत
१८	७२	४३	१	सहस्रा	सहस्र
१८	७३	४४	२	जन	मन
१८	७३	४६	१	करकण्डक	करकण्डू
१८	७४	५३	२	भार	पार
१६	७५	२	१	वालश्री	वलश्री
१६	७६	१०	१	है	०
१६	७७	२४	२	करते	करने
१६	७६	४१	१	गिरवर	गिरिवर
१६	७६	४६	१	क्रदन्न	क्रन्दन
१६	८०	५५	२	मे	मै
१६	८०	५८	१	मे	मैं
१६	८१	६२	२	मैं	था
१६	८१	६५	१	अनन्तीवार	अनन्तोदार
१६	८१	६६	१	वार्द्धिक	वार्द्धक
१६	८२	७६	२	तन मे	तन को
१६	८२	८१	१	मानता है	मनाता है
२०	८६	१५	१	ड्रो	हो

अध्ययन	पृष्ठ	पद	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२०	९०	६०	१	विस्त	विरत
२१	९१	५	१	चस्पा	चम्पा
२१	९२	१९	१	कहाँ	जहाँ
२२	९५	९	२	आमरण	आभरण
२२	९५	१०	१	ज्येष्ट	ज्येष्ठ
२२	९५	११	२	दर्शाह	दशार्ह
२०	९५	१५	१	नेम	नेमी
२२	९७	३०	२	अतिवीर	अतिधीर
२२	९७	३८	२	माग	मार्ग
२२	९८	४३	२	गन्धक	गन्धन
२३	१०१	२२	१	हो	०
२४	१०९	११	२	विविध	त्रिविध
२५	१११	३	३	गसे	वमे
२६	१२०	५२	१	समाचारी	सामाचारी
३१	१४७	११	१	प्रतिमाओ	प्रतिमा
३२	१५०	१५	३	आर्य	आर्त
३२	१"५	७१	१	अव	कव
३५	१७१	११	१	कज	तज
३६	१७९	७६	१	सौगान्धिक	सौगन्धिक
३६	१८३	१२३	१	होता है	होती हैं
३६	१८३	१२४	१	घटिकार्थं	घटिकार्घ
३६	१९३	२३५	१	की	का
३६	१९३	२३६	२	उमने	उससे
३६	१९६	२६४	१	भूमि	भूनि